

वैध समस्याओं के निदान हेतु  
हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति

# वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति

(पं. गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के पुरस्कृत पुस्तक)

लेखक

**राकेश प्रकाश**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो  
गृह मंत्रालय, भारत सरकार  
नई दिल्ली

(भारत सरकार, गृह मंत्रालय हिन्दी में पुलिस संबंधी पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए गृह मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समिति ने 23 मई, 1979 की अपनी बैठक में यह निर्णय लिया था कि न्याय वैद्यक, अपराध शास्त्र, पुलिस अनुसंधान और पुलिस प्रशासन आदि विषयों पर लिखित हिन्दी की मौलिक पुस्तकों पर पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना प्रतिस्थापित की जाए। तदनुसार 22 मार्च, 1980 को अपर सचिव की अध्यक्षता में गृह मंत्रालय में हुई बैठक में निर्धारित मापदंडों के आधार पर इस संबंध में जो निर्णय लिए गए उसके अनुसार इस योजना को अंतिम रूप दिया गया। इस योजना के अंतर्गत ही भाग 1 में मौलिक प्रकाशित पुस्तकों को पुरस्कृत किया जाता है तथा वर्ष 1982 से भाग 2 के अंतर्गत दिए गए विषयों पर पुस्तक लेखन कार्य कराया जाता है। इसी के तहत यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।)

प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक - पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो (गृह मंत्रालय),  
3/4 मंजिल, ब्लाक-II, सी.जी.ओ. कम्प्लेक्स,  
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

एकमात्र वितरक - नियंत्रक प्रकाशन विभाग,  
सिविल लाइंस, दिल्ली-110054

प्रथम संस्करण - दिसंबर, 2010

मुद्रक - प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय

इस पुस्तक में दिए गए विचार लेखक के निजी हैं इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं है।

## प्राक्कथन

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की प्रवृत्ति विषय पर यह पुस्तक कई मायनों में उपयोगी साबित होगी। मसलन इस पुस्तक में वर्तमान से लेकर अतीत तक के विभिन्न सामाजिक समस्याओं को आंकड़ों के साथ पेश करने की कोशिश की गई है। इस पुस्तक को लिखने के क्रम में भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उससे जुड़ी तमाम सूचना और जानकारियों को सही क्रम में प्रस्तुत किया गया है। मेरा यह मानना है कि समय-समय पर अर्जित ज्ञान और अनुभव का पुस्तकों के माध्यम से प्रसार होना चाहिए। विशेषकर भारतीय संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण है, जहां तकनीकी जागरूकता अभी भी अद्यतन नहीं है। मेरा यह विनम्र प्रयास इस दिशा में पहला कदम है। इस पुस्तक में मुख्य रूप से सामाजिक समस्याओं, कारण, निवारण, जानकारों की राय और उससे जुड़े विभिन्न आंकड़े जो कि राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो और दिल्ली पुलिस सहित तमाम दूसरी एजेंसियों से एकत्रित किए हैं उनका समावेश किया गया है। मैं इस विषय का सूत्रधार नहीं हूँ, इसलिए स्वाभाविक है कि कुछ जगहों पर जो सामग्री दी गई है वह प्रारम्भिक लगे। समाज से जुड़े मामले बेहद जटिल होते हैं। खासकर सामाजिक परिवर्तन और उससे जुड़े नए-नए पहलुओं का विस्तार से विश्लेषण करना अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया के समान है। इसकी वजह यह है कि भारत अनेकताओं में एकता वाला देश है। यहां हर राज्य की अपनी अलग बोली, सभ्यता, परंपरा और संस्कृति है। यही नहीं हर राज्य की अपनी अलग भौगोलिक स्थिति भी इसमें एक अहम भूमिका निभाती है, क्योंकि उसी के मुताबिक वहां की जीवन शैली और रहन-सहन के तौर तरीके तय होते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैंने तय किया कि राज्यवार या जिलेवार सामाजिक समस्याएं और हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति को सामने रखने के बजाए इन इलाकों में हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति और उससे जुड़े आंकड़ों को आधार

बनाया जाए ताकि सामाजिक हिंसा और समस्याओं से जुड़ी सही तस्वीर देश के सामने पेश की जा सके। मैंने इस पुस्तक में सरल भाषा के प्रयोग का विशेष ध्यान रखा है ताकि लोगों को विषय वस्तु समझने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़े। उम्मीद है मेरी यह कोशिश सामाजिक समस्याओं से जुड़े सभी लोगों के अध्ययन और शोध कार्य में उपयोगी साबित होगी, तभी मैं अपना प्रयत्न सार्थक समझूंगा।

राकेश प्रकाश

## आमुख

भारत देश एक शांतिप्रिय देश है या यह कहा जाए कि हमारे देश के नागरिक सभ्य समाज के शांत और सभ्य नागरिक हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। लेकिन समय परिवर्तनशील है और इसी परिवर्तन का प्रभाव आम जन-जीवन पर भी दिखाई देने लगा है। इस परिवर्तन के परिणामों को देखकर उससे उठने वाली समस्याएं व उनके निदान आज अति आवश्यक हैं।

इसी समस्या को देखते हुए पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना की मूल्यांकन समिति ने गहन विचार विमर्श के बाद इस विषय का निर्धारण किया कि इस समस्या के क्या कारण हैं और इनका निदान किस प्रकार हो पाए। इसके लिए देश के विभिन्न प्रांतों से प्राप्त रूपरेखाओं में से चयनकर लेखन कार्य के लिए लेखक को चुना गया। जिन्होंने इस विषय पर अपने विचार रखे हैं व ठोस सुझाव भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मैं समझता हूँ कि इस समस्या के निदान के लिए दिए गए सुझाव अवश्य कारगर होंगे। यह पुस्तक सभी पुलिस अधिकारियों, पुलिसकर्मियों, जेल अधिकारियों व जेलकर्मियों के साथ-साथ आमजन के लिए भी काफी उपयोगी होगी।

इस ब्यूरो द्वारा पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना में पुलिस व संबंधित विषयों पर मौलिक लेखन को सर्वथा प्रमुखता दी है। पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो का यह हमेशा प्रयास रहा है कि पुलिस, न्यायालिक विज्ञान, सामाजिक विषयों से संबंधित विभिन्न विषयों पर हिन्दी में उच्चस्तरीय व रुचिकर साहित्य उपलब्ध कराया जाए। इस पुस्तक के लेखन के लिए मैं श्री राकेश प्रकाश का आभार प्रकट करना चाहूँगा तथा इस पुस्तक के सफल प्रकाशन के लिए ब्यूरो के संपादक हिन्दी को धन्यवाद देना चाहूँगा।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक सभी आम जन के लिए उपयोगी

सिद्ध होगी। जिससे समाज में इस प्रकार की समस्याओं और समाधानों के बारे में जानकर वे इस समस्या से होने वाले प्रभावों पर आत्म मंथन कर सकेंगे।

**वि. श्रीवास्तव**

(विक्रम श्रीवास्तव)

महानिदेशक

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

## विषयों की अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय का नाम	पृष्ठ सं.
	प्राक्कथन	
1.	वैध समस्या और हिंसा की प्रवृत्ति	11
2.	गांधी के देश में हिंसा	20
3.	समस्याओं के जाल में उलझा समाज	28
4.	अशिक्षा, बेरोजगारी और हिंसा	38
5.	हिंसा और न्यायपालिका	46
6.	हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति पुलिस के लिए नई चुनौती	52
7.	हिंसा के प्रति सामाजिक उदासीनता	58
8.	हिंसा का सामाजिक विन्यास	65
9.	घरेलू हिंसा बनाम राजनीतिक हिंसा	72
10.	हिंसा का खूनी चेहरा	84
11.	हिंसा और राजनीति	91
12.	लोकतंत्र के आइने में हिंसा	101
13.	हिंसा बनाम सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन	108
14.	विकास और हिंसा	123
15.	इतना नाराज़ क्यों हैं लोग	130



16.	हिंसा से समस्या का निदान कब तक	138
17.	औद्योगीकरण और हिंसा	142
18.	हिंसा का बदलता स्वरूप	146
19.	सामाजिक हिंसा बनाम नक्सलवाद	152

## वैध समस्या और हिंसा की प्रवृत्ति

सरल भाषा में हिंसा का अर्थ मारपीट, खून-खराबा, तोड़फोड़ और व्यक्तिगत या सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुंचाना, इसके अलावा लूटपाट और विभिन्न प्रकार की आपराधिक गतिविधियां भी हिंसा के दायरे में आती हैं। लेकिन हिंसा का दायरा इन सबसे कहीं ज्यादा विस्तृत है। इसमें हर वो गतिविधि शामिल है, जिसे भारतीय संविधान में हिंसक कार्यों की सूची में शामिल किया गया है इस लिहाज से देखें तो हिंसा को मुख्य तौर पर निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है

1. आपराधिक हिंसा
2. सामाजिक हिंसा
3. राजनीतिक हिंसा
4. घरेलू हिंसा
5. सांप्रदायिक हिंसा
6. जातीय हिंसा
7. आतंकवादी हिंसा
8. नक्सली हिंसा
9. अलगाववादी हिंसा
10. चरमपंथी हिंसा
11. नस्लभेदी हिंसा

आज़ादी के 63 साल बाद भारतीय समाज एक ऐसे मुकाम पर खड़ा है, जहां विकास के साथ-साथ हिंसा की रफ्तार भी तेज़ गति से भारतीय समाज को अपनी चपेट में लेने की कोशिश कर रही है। एक बार फिर हिंसा के नाम पर देश के अलग-अलग हिस्सों में निर्दोष लोगों की जान ली जा रही है। लेकिन चौंकाने वाली बात ये है कि लोग अब अपने वैध समस्याओं का समाधान तलाशने के लिए हिंसा का सहारा लेने लगे हैं। लोकतांत्रिक देश के अंदर लोगों के भीतर पनप रही ये प्रवृत्ति न सिर्फ समाज के लिए बल्कि लोकतंत्र के लिए भी आने वाले समय में एक बहुत बड़े खतरे का संकेत है। क्योंकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम या खास हर किसी को अपनी बात कहने या रखने की पूरी आज़ादी है। भारत के संविधान में भी इस बात का विशेष तौर पर उल्लेख किया गया है। बावजूद इसके लोग अपनी मांगों को लेकर हिंसक गतिविधियों में शामिल होने लगे, तो कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रति लोगों का विश्वास धीरे-धीरे दरकने लगा है। लोगों को अपने अधिकार के लिए, अपने हक के लिए आवाज़ बुलंद करने की नौबत क्यों आती है। लोगों को अपनी मांगें मनवाने के लिए सड़कों पर आंदोलन करना पड़ता है, क्यों? इन सबके पीछे भी कुछ बुनियादी सवाल छिपे हुए हैं। मसलन

1. सकारात्मक सोच का अभाव
2. वास्तविक समस्याओं के प्रति उदासीन रवैया अपनाने की आदत
3. लाल फीताशाही की पुरानी परंपरा
4. संसाधनों की कमी
5. नीति निर्धारण में देरी
6. योजनाबद्ध कार्यशैली की परंपरा का न होना

हिंदुस्तान की आबादी का घनत्व देश के अलग-अलग हिस्सों में एक जैसा नहीं है। इसके अलावा हर इलाके की अपनी अलग रहन-सहन और बोली हैं यही नहीं वहां की भौगोलिक परिस्थिति भी एक दूसरे से काफी भिन्न है। लेकिन यही बात समय के साथ भारतीय समाज के लिए घाटे का सौदा साबित होती जा रही है। हमारे देश में सरकारी सुविधाओं और संस्थानों का जो भी खांचा आजादी के बाद खींचा गया वह सिर्फ कुछ

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 12

खास इलाकों तक ही सिमट कर रह गया। उसके बाद बढ़ती जनसंख्या के कारण बेरोजगारी ने ग्रामीण इलाकों में पलायन की एक ऐसी रवायत शुरू कर दी, अब गांव में बच्चा जवान होते ही शहर की राह पकड़ लेता है। वजह चाहे पढ़ाई हो या कमाई। लेकिन शहरों की दौड़ भाग भरी जिंदगी में कई बार इंसान जाने-अनजाने हालात का शिकार हो जाता है। ऐसे में वह अपने हक के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। लेकिन अपने हक की लड़ाई सही तरीके से कैसे लड़े, इस बात की आम लोगों को न तो कोई जानकारी होती है और न ही वह इसका ख्याल रख पाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में आम आदमी इस कदर बौखला जाता है कि वह हिंसा पर उतारू हो जाता है। नतीजा कोई निर्दोष उस हिंसा का शिकार हो जाता है, जिसकी कोई गलती नहीं होती है। आए दिन किसी न किसी शहर, गली और टोले मोहल्ले में लोग ऐसी हिंसा के शिकार होते रहते हैं। हाल के दिनों में ऐसे मामले काफी देखने को मिल रहे हैं। महात्मा बुद्ध, महावीर और स्वामी विवेकानंद ने भारतीय समाज को ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया को सत्य की राह पर शांतिपूर्ण तरीके से जीवनयापन करने का संदेश दिया। इसके लिए उन्होंने उपाय भी बताए। लेकिन बदले माहौल और हालात में लोगों में धैर्य और साहस की कमी साफतौर पर दिखाई देती है। लोगों में छोटी-बड़ी हर समस्या का निदान जल्दी पाने की लालसा बढ़ती जा रही है। आम आदमी सामाजिक सरोकार से खुद को दूर रखने लगा है। सामाजिक स्तर पर लोगों के भीतर आपसी हितों के प्रति उदासीनता ने भी आम लोगों के अंदर अलगाव की भावना को हवा देने में अहम भूमिका निभाई है। व्यक्ति, परिवार और समाज, इन तीनों के बीच आपसी तालमेल में कमी का मतलब है सामाजिक स्तर पर आपसी सामंजस्य की कमी। समाज को किसी भी देश की रचनात्मक और क्रियात्मक इकाई के तौर पर जाना जाता है। भारत के संदर्भ में कहा जाता है कि सामाजिक स्तर पर यहां के लोग पारंपरिक मान्यताओं और रीति-रिवाज को ज्यादा महत्व देते हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या हमारा अतीत हिंसक वारदातों का साक्षी रहा है अगर नहीं तो भारत में बढ़ती हिंसक वारदातों के पीछे का असली सच क्या है। क्या भारतीय समाज का मानवीय मूल्यों के प्रति सदियों पुराना विश्वास डगमगाने लगा है या फिर नई पीढ़ी मानवीय सरोकारों से मुंह मोड़ने लगी है। इसके अलावा भारतीय समाज के स्वरूप में आए बदलाव को भी

इसकी वजह माना जा सकता है। लेकिन सबसे अहम बात है कि अगर अहिंसा के बल पर अंग्रेजी हुकूमत की ईंट से ईंट बजाई जा सकती है, तो फिर अहिंसा के बलबूते पर दूसरे तमाम समस्याओं का शांतिपूर्ण हल क्यों नहीं निकाला जा सकता है। भारत के छोटे-छोटे शहरों में पनपती महानगरीय संस्कृति ने भारतीय समाज के मानवीय पहलू को दागदार कर दिया है। जैसे-जैसे इस संस्कृति का फैलाव बढ़ता जा रहा है भारतीय समाज में हिंसक वारदातों का दायरा और संख्या दोनों में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की अगर बात करें तो आंकड़े बताते हैं कि ज्यादातर हिंसक वारदातों में नजदीकी या करीबी लोगों का ही हाथ होता है। दिल्ली पुलिस की ओर से जारी आंकड़ों पर एक नज़र डालें तो पता चलता है कि 46.46 फीसदी मामलों में आरोपी और पीड़ित पक्ष एक दूसरे के पड़ोसी होते हैं। जबकि 15.48 प्रतिशत मामलों में दोस्तों का हाथ पाया गया है। जहां तक हिंसक वारदातों के मामले में रिश्तेदारों की बात की जाए तो उनका योगदान तकरीबन 8.85 प्रतिशत है। जबकि 5.31 प्रतिशत मामले ऐसे भी सामने आए हैं जिनमें कर्मचारी या साथ काम करने वाले लोगों की संलिप्तता पाई गई है। वहीं 20.35 प्रतिशत मामलों में ऐसे लोगों का नाम सामने आया है जो किसी न किसी रूप में पीड़ित को जानते हैं। लेकिन इन सबसे उलट तकरीबन 3.54 प्रतिशत मामलों में ही अजनबी आरोपियों का हाथ पाया गया है। ये आंकड़े साफ-साफ इशारा करते हैं कि आपके खिलाफ हिंसक वारदातों में बाहरी लोगों का हाथ कम और आपके अपने और जान पहचान वाले लोगों की भूमिका ज्यादा होती है। कमोबेश यही हाल देश के दूसरे हिस्सों का भी है। दूर दराज के गांवों में रहने वाले लोगों को हम इस मामले में अपवाद के तौर पर शामिल कर सकते हैं। क्योंकि ऐसे इलाकों में होने वाली हिंसक वारदातों की वास्तविक संख्या का अंदाजा सही-सही नहीं लगाया जा सकता है। दिल्ली पुलिस के इस आंकड़े ने एक चौंकाने वाले तथ्य की ओर इशारा किया है। वह यह कि हाल के दिनों में महानगरों में होने वाली हिंसा में भले ही कमी आई हो इसके बावजूद ग्रामीण इलाकों में होने वाली हिंसा की तुलना में इसका अनुपात कहीं ज्यादा है। गांवों में रहने वाली जनता की शिक्षा का स्तर और पढ़े लिखे लोगों की तादाद शहरों और महानगरों के मुकाबले काफी कम है। खासकर आदिवासी और भौगोलिक रूप से दुर्गम इलाकों में। लेकिन महानगरों में तमाम सुविधाओं और

सुरक्षा व्यवस्था होने के बावजूद हिंसा की बढ़ती वारदातों ने शिक्षित समाज के उस हिंसक चेहरे को जमाने के सामने बेनकाब कर दिया है, जिसकी किसी को उम्मीद नहीं थी। अगर समाज का पढ़ा लिखा तबका ही हिंसा को अपनी समस्या सुलझाने के लिए अचूक हथियार की तरह इस्तेमाल करना शुरू कर दे तो हालात बेकाबू होना लाजमी है। यही वह तथ्य है जिन पर गंभीरता के साथ विचार करने की जरूरत है। यानि आप जिस समाज में रह रहे हैं उसकी नींव धीरे-धीरे ही सही लेकिन दरकने जरूर लगी है। महानगरों की दौड़ भाग भरी जिंदगी में इंसान का मानवीय चेहरा कहीं गुम सा हो गया है। ये बात सैद्धांतिक तौर पर भले ही सटीक बैठे या नहीं लेकिन व्यावहारिक तौर पर या रोजमर्रा की जिंदगी में महानगरों में रहने वाली जनता अपने इर्द-गिर्द इस सच्चाई से अक्सर दो चार होती रहती है। एक और बात, रोजगार की तलाश में शहरों में आकर बसे लोगों के बीच समाज की वास्तविक अवधारणा और उससे जुड़े पहलुओं का कोई स्वरूप दिखाई नहीं देता है। यही वजह है कि कहीं लोग अपने हक की खातिर हथियार उठाने को तैयार हैं तो कहीं लोग धर्म के नाम पर जान देने और लेने पर उतारू हैं। कहीं जातिवाद के नाम पर लोग कानून अपने हाथ में लेने को बेताब हैं तो कहीं क्षेत्रवाद के नाम पर सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने में लोग जरा भी संकोच नहीं करते। लोग ये क्यों भूल जाते हैं कि देश को सही तरीके से चलाने की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की ही नहीं होती है। इस पूरी प्रक्रिया में देश का आम नागरिक समान रूप से भागीदार होता है। लेकिन आम जनता के भीतर सदभाव, सहिष्णुता और मानवता की भावना नहीं होने के चलते बुनियादी स्तर पर आम लोगों में हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। हिंसक वारदात चाहे वो सिंगुर की हो या नंदीग्राम की या फिर देश के किसी और हिस्से की। नुकसान हमेशा आम आदमी का ही होता है। हिंसा किसी भी रूप में मानवता की सबसे बड़ी दुश्मन है। यही वजह है कि जब देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाने की बारी आई तो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी अहिंसा का दामन थामा था। इसके पीछे भी कई कारण हैं। उनमें पहला ये कि हिंसा कभी-भी किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकती है। दूसरा ये कि हिंसा अपने आप में उस जानलेवा बीमारी की तरह है जो पूरे देश और समाज को अंदर से खोखला कर देती है। सामाजिक स्तर पर मानवीय दृष्टिकोण के अभाव की वजह से पारिवारिक

हिंसा के क्षेत्र में तेजी आई है। मोहनदास करमचंद गांधी भी इस बात से भली-भांति वाकिफ थे। इसलिए पहले उन्होंने सामाजिक स्तर पर लोगों से हिंसा का परित्याग करने की अपील की। महात्मा गांधी को भी इस बात का इल्म था कि गोरे अंग्रेजों का दिल कितना काला है। इसलिए उन्होंने सबसे पहले भारतीय समाज को अहिंसा के एक ऐसे डोर से बांध दिया जिसके आगे अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति भी बेकार साबित हुई। वो इस सच्चाई से भी भली भांति परिचित थे कि अंग्रेजों के पास तोप से लेकर तमाम तरह के हथियार और लड़ाई के दूसरे साजो सामान मौजूद हैं। लेकिन गांधी सत्य, अहिंसा और शांति के साथ साथ मानवता के भी पुजारी थे और वो आम जनता का दर्द समझते थे। इसलिए उन्होंने आजादी के मतवाले करोड़ों हिंदुस्तानियों को तोपों से लैस अंग्रेजों के खिलाफ अहिंसा के हथियार से वार करने की सलाह दी। बापू ने आजादी की लड़ाई मानवता की खातिर लड़ी और उसी अहिंसा के बलबूते हम सबको आजादी दिलाई। परन्तु बदलते वक्त के साथ आज समाज में इस हद तक बदलाव आ चुका है कि उसके लिए सत्य, अहिंसा और मानवता के मायने बदल चुके हैं। आजादी के आंदोलन के दौरान जिस समाज ने पूरी दुनिया के सामने अहिंसात्मक आंदोलन की मिसाल पेश की थी। वही समाज आज अपनी छोटी-छोटी वैध समस्याओं का हल तलाशने के लिए हिंसा का सहारा लेने में एक पल की भी देरी नहीं लगाता है। बड़े दुख की बात है कि उसी गांधी के देश में मानवता नाम की चीज खत्म होती जा रही है, जिसे पूरी दुनिया आज भी अहिंसा और मानवता की प्रतिमूर्ति मानती है। भारतीय समाज का वो पारंपरिक स्वरूप अब कहीं नजर नहीं आता है जिसके आगे अंग्रेजों को भी हार माननी पड़ी थी। गांव की चौपाल से लेकर महानगरों के पांच सितारा होटलों तक, हर जगह भारतीय समाज की वो झलक दिखाई देती है, जो कहीं से भी इस बात की ओर इशारा करती है कि किसी को भी सही मायने में देश या समाज की फिक्र ही नहीं है। हर जगह बदलाव की बयार बह रही है। लेकिन बदलाव के मायने क्या होने चाहिए। ये सोचने के लिए किसी के पास वक्त ही नहीं है। बदलाव की इसी आंधी ने भारतीय समाज के अहिंसात्मक स्वरूप को बुरी तरिके से उजाड़ कर रख दिया है। सामाजिक बदलाव के नाम पर समाज के भीतर हर दिन मानवता की बलि दी जा रही है। उसकी जगह समाज में दिनोंदिन बढ़ती जा रही हिंसा ने ले ली

है। आज हमारा समाज उस दौर से गुजर रहा है, जहां सामाजिक और मानवीय मूल्यों की कोई अहमियत नहीं रह गई है। ज़रा सोचिए। एक वक्त था जब मानवता के पुजारी बापू के पीछे अहिंसा के नाम पर लाखों की तादाद में लोग सड़कों पर उतर आते थे। लेकिन आज गांव भी वही है, गली नुक्कड़ की सड़कें भी वहीं हैं, परन्तु हालात बदल चुके हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो आम आदमी ने मानवता नाम की चादर उतार कर फेंक दी है। मानवाधिकारों को लेकर पूरी दुनिया में एक से नियम कायदे लागू हैं। भारत में भी लागू हैं। लेकिन सिर्फ नियम कानून लागू होने भर से ही लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती है। भारत में मानवाधिकार आयोग है, समय-समय पर उसके क्रियाकलाप और गतिविधियों की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिल जाती है। लेकिन जब उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर के एक गांव में महिला को निर्वस्त्र करके घुमाए जाने की शर्मनाक घटना घट चुकी होती है। मानवता या महिला अधिकारों की रक्षा के लिए गठित महिला आयोग की गतिविधियों का दायरा क्या सिर्फ यहीं तक सिमटा हुआ है कि किसी पीड़ित को न्याय मिल जाए। वास्तव में भारतीय समाज में अशिक्षित लोगों से ज्यादा तादाद उन लोगों की हो गई है जो पढ़े लिखे अशिक्षित हैं। जरूरत ऐसे लोगों को ही शिक्षा के सही मायने समझाने की है ताकि ऐसी वारदातों पर लगाम लगायी जा सके। भारतीय समाज में पढ़े लिखे अशिक्षित वर्ग की संख्या में बढ़ोत्तरी की वजह से ही हत्या, बलात्कार, चोरी-लूटपाट, अपहरण और दहेज हत्या जैसी वारदातों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि देखने को मिल रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों पर गौर करें तो हालात दिनों-दिन बद से बदतर होते जा रहे हैं।

आंकड़े पर गौर करें तो देश में प्रति मिनट होने वाले आपराधिक मामलों की तस्वीर कुछ इस कदर उभर कर सामने आती है -

29 मिनट में एक बलात्कार

19 मिनट में एक हत्या

23 मिनट में एक अपहरण

77 मिनट में दहेज हत्या

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 17



- 15 मिनट में बाल यौन-शोषण
- 03 मिनट में कानून तोड़ने की घटना
- 10 मिनट में धोखाधड़ी
- 02 घंटे में एक डकैती की वारदात
- 09 घंटे में दंगे फसाद की घटना
- 02 मिनट में चोरी की घटना
- 05 मिनट में जायदाद से जुड़े अपराध की घटना
- 35 मिनट में एक बच्चा आपराधिक घटनाओं का शिकार

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े वाकई में आम लोगों की आंखें खोल सकते हैं कि जिस समाज में वो रह रहे हैं उसकी वास्तविक स्थिति क्या है। जाहिर है इसमें कहीं न कहीं समाज के ही किसी वर्ग या व्यक्ति विशेष का हाथ है। इसके अलावा आंकड़ों से एक बात और साफ हो जाती है कि आपराधिक मामलों पर लगाम लगाने का जो भी तौर तरीका समाज या सरकार की तरफ से इस्तेमाल में लाया जा रहा है, उसमें बड़े पैमाने पर बदलाव लाने या कुछ नए तरीके इस्तेमाल में लाने की जरूरत है ताकि समाज में लोगों के भीतर हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति को रोका जा सके।

### भारत के प्रमुख शहरों में अपराध दर की सूची

1.	इंदौर	792.7	13	सूरत	390.8
2.	भोपाल	760.8	14	राजकोट	390.4
3.	जयपुर	606.8	15	अहमदाबाद	383
4.	जबलपुर	585.8	16	लखनऊ	373.5
5.	विजयवाड़ा	552.6	17	वडोदरा	342.4
6.	पटना	524.0	18	पुणे	341.3
7.	कोच्चि	487.2	19	आगरा	325.8

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 18

8.	बेंगलुरु	475.6	20	हैदराबाद	314.3
9.	नागपुर	461.2	21	कानपुर	297.7
10.	फरीदाबाद	428.4	22	कोयंबटूर	271.4
11.	विशाखापट्टनम	412.3	23	नासिक	270.4
12.	दिल्ली	397.9	24	चेन्नई	256.9

## गांधी के देश में हिंसा

भारत की जनता ने जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रवाद को भुलाकर सत्य और अहिंसा के बल पर आजादी हासिल की थी। लेकिन विकास के पथ पर अग्रसर हिंदुस्तान की जनता आज इन्हीं छोटे-छोटे मुद्दे को लेकर हिंसक रुख अख्तियार करती जा रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो आम लोगों में हिंसा की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। भले ही वो हिंसा वैध समस्याओं के निदान हेतु ही क्यों न हो। दिल्ली से सटे गाजियाबाद के साहिबाबाद इलाके में शहीद नगर के एच ब्लॉक में 26 अक्टूबर 2009 को दो पड़ोसियों आमिर और सतरुद्दीन के बीच आपसी समस्या के समाधान को लेकर विवाद इतना बढ़ गया कि मामला थाने तक जा पहुंचा। लेकिन क्या इस तरह के हिंसक व्यवहार को किसी भी नजरिए से सही ठहराया जा सकता है, जवाब होगा नहीं। अहिंसात्मक आंदोलन का जो मंत्र बापू ने दिया था, ऐसा लगता है कि लोगों ने उसे पूरी तरह से भुला दिया है। लोकतांत्रिक मान्यताओं के मुताबिक शांतिपूर्ण और वैधानिक उपायों के ज़रिए किसी भी समस्या का अहिंसक तरीके से सर्वमान्य हल निकाला जा सकता है। लेकिन इसके ठीक विपरीत लोकतांत्रिक देशों में हिंसक संघर्ष तेजी से बढ़ रहे हैं। सबसे चौंकाने वाली बात है लोकतांत्रिक देशों में सामाजिक स्तर पर बढ़ती हिंसक वारदातों में आई तेजी। सामाजिक हिंसा में आई तेजी ने देश के सामने एक नई तरह की चुनौती पेश की है। वैध समस्याओं को लेकर होने वाली सामाजिक हिंसा पर कैसे काबू पाया जाए। इस सवाल का जवाब न तो सरकार के पास है और न ही पुलिस प्रशासन के पास। क्योंकि ये वो लोग होते हैं जो न तो आतंकवादी होते हैं और ना ही नक्सलवादी। महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक आंदोलन के ज़रिए ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंका था और देश को आजादी दिलाई थी। ऐसे में सवाल उठता है कि आज के भारतीय समाज के भीतर इतनी भी ताकत नहीं बची है कि

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 20

वह अपनी छोटी-मोटी सामाजिक या निजी समस्याओं के बेड़ियों से खुद को अहिंसात्मक तरीके से आज़ाद करा सके। आज़ादी के दिनों की बात है। गांधी जी भारत में ब्रिटिश अफसरों द्वारा किए गए अपमान का बदला लेने के लिए मदन लाल दींगरा द्वारा ब्रिटिश अधिकारी कर्जन वाइली की हत्या की घटना की सूचना पाकर विचलित हो उठे थे। उन्हें इस बात से तब और अधिक चिंता होने लगी थी कि इस घटना को भारत के अधिकसंख्य युवाओं का समर्थन है। यही नहीं, अपने इंग्लैंड प्रवास के दिनों में कुछ ऐसे दलों के नेताओं से उनकी मुलाकात हुई जो स्वतंत्रता पाने के लिए अंग्रेजों की हत्या करना भी उचित मानते थे। गांधी जी को उन्हें समझाने के प्रयास में सफलता नहीं मिल पायी। तब उन्होंने इन सारी स्थितियों के बारे में चिंतन-मनन किया और फिर वहां से दक्षिण अफ्रीका की वापसी यात्रा में 'हिंद स्वराज' की रचना की। गांधी जी ने इस पुस्तक में यह समझाने का प्रयास किया कि स्वराज्य तभी प्राप्त हो सकता है जब भारत की महान सभ्यता का भारतीय अनुसरण करें तथा स्वयं को आधुनिक सभ्यता के विनाशकारी प्रभावों से बचा कर रख सकें। उनका यह स्पष्ट मानना था कि हिंसा का भारतीय सभ्यता में कोई स्थान नहीं है।

वे भारत में दी जा रही उच्च शिक्षा को इसलिए महत्वहीन मानते थे क्योंकि उनका मानना था कि वह छात्रों को जीवनगत मूल्यों की शिक्षा नहीं देती। आज के समाज और युवाओं की सोच को देखकर लगता है कि गांधी जी सही कहा करते थे कि जो शिक्षा भारतीयों को दी जा रही है वह महत्वहीन है। क्योंकि हाल के दिनों में समाज में होने वाले ज्यादातर हिंसक वारदातों में युवा वर्ग की भूमिका ही ज्यादा देखने को मिलती है।

गांधी जी का कहना था कि मेरी अहिंसा वह अहिंसा है जहां सिर्फ एक मार्ग होता है अहिंसा का मार्ग। उनका विचार था कि अहिंसा के मार्ग का पहला कदम यह है कि हम अपने दैनिक जीवन में सहिष्णुता, सच्चाई, विनम्रता, प्रेम और दयालुता का व्यवहार करें। लेकिन वक्त बीतने के साथ ही गांधी के देश में ही आम लोगों ने उनके सिद्धांत को भुला दिया। इसका उदाहरण है पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में घटी वो घटना, जिसमें सड़क पर खड़ी गाड़ी को हटाने को लेकर शुरू विवाद एक छात्र की मौत के बाद ही जाकर शांत हुआ। मारे गए छात्र का

नाम शहनवाज था और वह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में स्नातक तृतीय वर्ष का छात्र था। हत्या की ये वारदात उस वक्त अंजाम दी गई, 26 अक्टूबर 2009 की रात शहनवाज स्टेशन के पास एक दुकान में खाना खाने गया था। लेकिन संकरी गली होने के कारण बाईक हटाने को लेकर शहनवाज और कल्लू खां नाम के शख्स के बीच कहासुनी इतनी बढ़ गई कल्लू खां ने शहनवाज पर गोली चला दी। शहनवाज को आनन-फानन में नजदीकी अस्पताल पहुंचाया गया। लेकिन डाक्टर उसकी जान बचाने में नाकाम रहे और उसने अस्पताल में ही दम तोड़ दिया। अलीगढ़ में एक छात्र की मौत के बाद छात्रों ने शहर में जमकर हंगामा एवं तोड़फोड़ किया और सड़क एवं रेल यातायात को जाम करने की कोशिश की। अलीगढ़ शहर की ये घटना भारतीय समाज की उस हकीकत को बेपर्दा करती है, जिसकी वजह से लोग अपनी वैध समस्या को लेकर आवाज़ तो उठाते हैं लेकिन समस्या की गुथी सुलझने की बजाए और उलझ जाती है। अलीगढ़ के शहनवाज के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ जान पड़ता है। क्योंकि गली की सड़क पतली होने की वजह से राहगीरों को आने-जाने में परेशानी हो रही थी। लिहाजा सड़क पर बाईक खड़ी करने को किसी भी लिहाज से सही नहीं ठहराया जा सकता है। विवाद की असली वजह भी यही थी। लेकिन समस्या के समाधान के लिए शुरू हुई बहस ने एक और बड़ी समस्या खड़ी कर दी। जिसके वजह से अलीगढ़ के आला पुलिस अधिकारी असीम अरूण और जिलाधिकारी की उत्तेजित छात्रों को शांत कराने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। अलीगढ़ की ये घटना महज एक बानगी भर है। भारत जैसे विशाल देश, जिसकी आबादी तकरीबन एक अरब के आसपास बताई जा रही है, यहां के हजारों गांवों और कस्बों में आए दिन ऐसी वारदातें होती रहती हैं। कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनके बारे में हमें समाचार माध्यमों के जरिए जानकारी मिल जाती है। लेकिन देश के दूर दराज के अधिसंख्य इलाकों में होने वाली घटना की जानकारी दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों की वजह से या तो हमें नहीं मिल पाती या देर से मिलती हैं लेकिन अलीगढ़ जैसी घटना हमारे समाज की वो काली हकीकत थी जिससे हम मुंह नहीं मोड़ सकते। अगर इस तरीके से लोग एक दूसरे की जान लेने पर उतारू होने लगेंगे तो जरा सोचिए की भारतीय समाज और यहां रहने वालों लोगों की क्या हालत होगी। एक

वक्त था जब भारतीय समाज की सहिष्णु परंपरा और अहिंसा को बढ़ावा देने वाली संस्कृति की पूरी दुनिया में मिसाल दी थी। दुनिया भर से बड़ी संख्या में विदेशी छात्र साबरमती और रबीन्द्रनाथ टैगोर के आश्रम में सत्य, अहिंसा और शांति पर शोध करने के लिए आते हैं। लेकिन खुद भारत की माटी पर पैदा हुए उसके अपने सपूतों ने उसकी मान-प्रतिष्ठा और छवि को ठेस पहुंचानी शुरू कर दी है। महात्मा गांधी ने कहा था कि अंग्रेजी में एक कहावत है कि ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है। नीतियां तो बदल सकती हैं और बदलती हैं। परन्तु अहिंसा का पंथ अपरिवर्तित है।

गांधी जी मानते थे कि अहिंसा की बात सभी धर्मों में है। उन्होंने कहा कि अहिंसा हिंदू धर्म में है, ईसाई धर्म में है और इस्लाम में भी है। उनका कहना था कि पवित्र कुरान में सत्याग्रह का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है उन्होंने इस्लाम शब्द का अर्थ 'शांति' बताया जिसका तात्पर्य है अहिंसा। उन्होंने कहा कि अहिंसा का दृढ़ता से आचरण अवश्य हमें सत्य तक ले जाता है, जो हिंसा के व्यवहार से संभव नहीं है इसलिए अहिंसा पर मेरा दृढ़ विश्वास है। यहां एक बात गौर करने वाली है कि आज के भारत का सामाजिक परिवेश पूरी तरह बदल चुका है। लोगों के सोचने और काम करने का तरीका बदल चुका है। रिश्तों की बुनियाद में दरारें आ चुकी हैं। अखबारों में अक्सर खबरें पढ़ने को मिल जाती हैं कि कभी पिता ने आपसी कहासुनी में बेटे की हत्या कर दी तो कभी बेटे ने पैसे और संपत्ति को लेकर हुए विवाद में पिता की जान ले ली। आधुनिक भारतीय समाज हर पल करवट बदलने का आदि हो चुका है। ऐसे में उसके लिए तमाम चीजों के मायने बदल चुके हैं। शायद यही एक बड़ी वजह है कि भारत में सामाजिक स्तर पर आपसी तालमेल का अभाव साफ तौर पर दिखाई देता है। संचार और विकास के इस युग में आज कोई किसी की सुनने को तैयार नहीं है। लेकिन एक वक्त ऐसा भी था जब यही भारत का समाज महात्मा गांधी की एक आवाज़ पर सड़कों पर उतर आता था।

गांधी जी ने अपने विचारों में स्वराज्य के साथ आदर्श समाज, आदर्श राज्य अथवा रामराज्य का कई बार प्रयोग किया है, जो वास्तव में लगभग एक है। वह रामराज्य को बुराई पर भलाई की विजय के रूप में देखते हैं। स्वराज्य को वे ईश्वर के राज्य के रूप में मानते हैं क्योंकि

उनके लिए ईश्वर का अर्थ है सत्य। अर्थात् सत्य ही ईश्वर है - सत्य ही चिरस्थायी है। सत्य की व्याख्या करते हुए गांधी जी यह भी कहते हैं कि किसी विशेष समय पर एक शुद्ध हृदय जो अनुभव करता है वह सत्य है और उस पर अडिग रह कर ही शुद्ध सत्य प्राप्त किया जा सकता है वे और आगे इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सत्य की साधना आत्मपीड़न एवं त्याग से ही संभव है। गांधी जी ने अपने विचार और कर्म के ज़रिए समाज के सामने जो मापदंड स्थापित किए उसकी सराहना पूरी दुनिया में की जाती है। लेकिन उनके बताए गए रास्ते पर चलने के लिए किसी के पास फुर्सत नहीं है।

गांधी जी के विचार को सत्य, अहिंसा से ही जाना जाता है। सत्य के समान अहिंसा की शक्ति असीम और ईश्वर पर्याय है। सत्य सर्वोच्च कानून है और अहिंसा सर्वोच्च कर्तव्य। वे कहते हैं कि अहिंसा का तात्पर्य कायरता नहीं है। इन दोनों का अस्तित्व एक साथ संभव नहीं है। उनके लिए अहिंसा न केवल संपूर्ण जीवन दर्शन है बल्कि एक जीवन पद्धति है।

गांधी जी के एकादश व्रत थे जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, आचार, अपरिग्रह, अस्पृश्यता निवारण, शरीरश्रम, सर्वधर्म समभाव और स्वदेशी है। सत्याग्रह को तभी जाना समझा जा सकता है जब समग्रता के साथ सत्य को जाना जाए। ईर्ष्या, द्वेष, अविश्वास जैसी मानसिक हिंसा को भी वे उतना ही घातक समझते थे जितना कि शारीरिक हिंसा को। कहने का अर्थ यह है कि वे किसी भी रूप में हिंसा का बचाव करने के पक्षधर कभी नहीं रहे। गांधी जी ने सत्याग्रह में भी इसे और स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा : सत्याग्रह शब्द का उपयोग अक्सर बहुत शिथिलता पूर्वक किया जाता है और छिपी हुई हिंसा को भी सत्याग्रह का नाम दे दिया जाता है। लेकिन इस शब्द का रचयिता होने के नाते मुझे यह कहने कि अनुमति मिलनी चाहिए कि उसमें छिपी हुई अथवा प्रकट, सभी प्रकार की हिंसा का, फिर वह कर्म की हो या मन और वाणी की हो, पूरा बहिष्कार है।

गांधी जी ने 'हिंद स्वराज' में आधुनिक सभ्यता की तीखी आलोचना करते हुए इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य की स्थापना भारतीय सभ्यता के मूल्यों पर होनी चाहिए। वे पाश्चात्य सभ्यता को संक्रामक रोग की तरह मानते थे जो भौतिक सुख पर आधारित है। वे उसके

अंधानुकरण के घोर विरोधी थे लेकिन वे कहते थे कि पश्चिमी के पास ऐसा बहुत कुछ है जिसे हम अपना सकते हैं और परिस्थितियों के अनुसार अपने अनुकूल ढाल सकते हैं।

गांधी जी मानते थे कि स्वराज्य का अर्थ है हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी, ईसाई, यहूदी सभी धर्मों के लोग अपने धर्मों का पालन कर सकें और ऐसा करते हुए एक-दूसरे की रक्षा और एक-दूसरे के धर्म का आदर करें। उन्होंने बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता का कारण, अविश्वास, प्रतिशोध और असंभव आकांक्षाओं के टकराव को माना। उन्होंने कहा कि हिंदू-मुस्लिम एवं सभी सम्प्रदायों के प्रयोजन, हित एवं संगठन में समग्र राष्ट्रीय हितों की वृद्धि संभव है जिसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि हिंदू-मुस्लिम एकता ही स्वराज्य है।

गांधी जी ने 'हिंद-स्वराज' में जिन विचारों को अपनाने पर जोर दिया है उन्हें उनके जीवन काल में अनदेखा किया गया। लेकिन आज उनके महत्व को पूरे विश्व में स्वीकार किया जा रहा है। उनकी वैश्विक स्वीकार्यता आज इतनी बढ़ चुकी है कि उनके जन्मदिन (2 अक्टूबर) को पूरी दुनिया में 'विश्व अहिंसा दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा है। यह गांधी के विचारों की वैश्विक स्वीकार्यता का ही परिणाम है। गांधी जी ने कहा था कि यह मानव आज नहीं तो कल सोचेगा जरूर और जानेगा कि यह बूढ़ा व्यक्ति कोई मूर्ख नहीं है।

मेरे सपनों का भारत में गांधी जी कहते हैं भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएं रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उसे भारत में मिल सकता है।

ग्राम स्वराज्य की गांधी जी की कल्पना थी कि वह ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिसमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।

आजादी के बाद से ग्रामीण विकास की जो अनेक योजनाएं संचालित की जा रही हैं उनका आधार गांधी जी की ग्राम स्वराज्य की परिकल्पना ही है। नई पंचायती राज व्यवस्था उसी सोच का प्रतिफल है, जिसमें महिलाओं, अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, अल्प संख्यकों और शोषित पीड़ितों को उनके अधिकार मिले हैं और वे अपने विकास की कहानी



अब स्वयं लिख रहे हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम (नरेगा) के माध्यम से 'महात्मा गांधी के जंतर.....' की कसौटी को आजमाने का सफल प्रयास किया गया है, जिसकी समूचे विश्व में सराहना हुई है।

गांधी जी ने कहा था, "मैं तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या जब अहं तुम्हारे ऊपर हावी होने लगे तो आजमाना भारत में वैध समस्याओं की खातिर एक दूसरे का खून बहाने पर उतारू लोग जल्द ही एक दूसरे को गले लगाना शुरू कर देंगे। इसके अलावा देश के कमजोर वर्गों की आवाज़ को प्रशासन अनसुना कर देता है। सामाजिक हिंसा पर काबू पाने के लिए जरूरी है कि बेरोजगार युवकों की फौज को गलत दिशा और दुश्मन देशों के एजेंटों के हाथ में जाने से रोकना होगा। सरकार के पास जितनी भी कल्याणकारी योजनाएं हैं उसे ईमानदारी से लागू किया जाए। प्रशासनिक ढांचे में मूलभूत परिवर्तन लाया जाए। इसके अलावा सभी स्तरों पर काम करने वाले लोगों की जिम्मेदारी तय की जाए। गैर सरकारी संगठनों और नागरिक संगठनों को भी अपनी भूमिका कारगर तरीके से निभाने के लिए सरकार की तरफ से सभी तरह की सुविधाएं मुहैया कराई जाएं। साथ ही सभी विभागों के कामकाज की समय-समय पर समीक्षा की जाए।

समाज में बढ़ती हिंसा की प्रवृत्ति को काबू करने के लिए सामाजिक स्तर पर मीडिया के जरिए सौहार्दपूर्ण वातावरण का सृजन करने पर जोर देना चाहिए। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक वातावरण का सृजन करने पर जोर देना चाहिए। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य दूसरे सभी क्षेत्रों में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी को बढ़ावा देना चाहिए।

सामाजिक पहल के जरिए लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए मीडिया के जरिए लोगों तक समुचित जानकारी के आदान-प्रदान की प्रक्रिया में तेजी लाई जाए। देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास में आम लोगों की सार्थक भूमिका के बारे में लोगों को जागरूक करना समय की जरूरत बनती जा रही है इसे तत्काल प्रभाव से अमल में लाने की जरूरत है।

पारिवारिक और सामाजिक हिंसा के खतरनाक अंजाम के बारे में लोगों को आगाह करना और हिंसा की रोकथाम और बचाव के तौर

तरीके के बारे में आम लोगों को शिक्षित करना एक महत्वपूर्ण पहलू है।  
बच्चों में बढ़ती हिंसा की प्रवृत्ति पर लगाम लगाने के लिए मीडिया की मदद लेने के साथ-साथ मीडिया में दिखाए जाने वाले हिंसक कार्यक्रमों की समीक्षा कर उसके बुरे प्रभाव से निपटने के बारे में लोगों को जागरूक करने की जरूरत है।

## समस्याओं के जाल में उलझा समाज

भारत की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन इस बात की ओर इशारा करता है कि विकास के इस दौर में भारत की जनता जितनी तेजी से तरक्की कर रही है, उससे दोगुनी रफ्तार से वो अपने आसपास समस्याओं का जंजाल भी बुनती जा रही है। भारतीय संदर्भ में आम लोगों की समस्या और विकास की राह में सबसे बड़ी बाधा भारत की विशाल जनसंख्या है। इसके अलावा योजनाबद्ध तरीके से काम करने की सोच का अभाव भी एक बड़ी वजह है। लेकिन हाल के दिनों में जिस तरीके से लोग वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा का सहारा ले रहे हैं। उससे एक बात साफ तौर पर जाहिर होती है कि लोगों में कहीं न कहीं ये बात घर कर गई है कि अगर आप चुप बैठेंगे तो उसका खामियाजा न सिर्फ आपको भुगतना पड़ेगा बल्कि फायदा कोई और उठा ले जाएगा। आजादी से पहले हम हर छोटी-बड़ी बात के लिए फिरंगियों को दोषी ठहराते थे। लेकिन आजादी के 63 साल बीत जाने के बाद अब आम लोगों की हिम्मत जवाब देने लगी है। अब वो सरकार और समाज के भरोसे अपनी समस्याओं को नहीं छोड़ना चाहते। यहीं नहीं अब गांव-गांव में संचार की बढ़ती सुविधाओं ने लोगों को इतना जागरूक बना दिया है कि वो अपने हक की लड़ाई के लिए अब ज्यादा इंतजार नहीं करना चाहते। क्योंकि उन्हें पता है कि अगर वो इंसफ पाने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाएंगे तो कोई खास फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि भारत की अदालतों में करोड़ों की संख्या में मुकद्दमे पहले से ही लंबित पड़े हैं। एक मुकद्दमे की सुनवाई में औसतन पांच साल से लेकर बीस साल तक भी वक्त लग सकता है। कानूनी लड़ाई की प्रक्रिया इतनी लंबी और खर्चीली है कि कोई इसके चक्कर में नहीं पड़ना चाहता। इसलिए लोग अपनी मांगों को लेकर सड़क पर उतरने में जरा भी देरी नहीं करते हैं। हाल के दिनों में जिस तरीके से हिंसक वारदातों और आंदोलन के

दौरान भीड़ का हिंसा पर उतारू हो जाने का मामला सामने आया है। उसने भारतीय जनमानस के उस हिंसक चेहरे को उजागर कर दिया है, जिसका नकाब पहनकर वो अपनी मांगे नहीं माने जाने पर हिंसक वारदातों को अंजाम देता है। क्या हिंसक आंदोलनों के जरिए वाकई में समस्याओं का निदान जल्दी निकल आता है। हिंसा की समस्या के समाधान के लिए किस हद तक उचित ठहराया जा सकता है। किसी भी तरह की हिंसा अपने आप में मानवता के प्रति अपराध हैं। ऐसे में अपने फायदे के लिए हिंसक आंदोलन करना क्या कानूनी रूप से सही है। ऐसे कई सवाल हैं जिसे जानना बेहद जरूरी है।

मसलन बुधवार, 21 जनवरी, 2009 को उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में ज़मीन के मुआवज़े के लिए प्रदर्शन कर रहे किसानों पर हुई पुलिस फायरिंग में एक किसान की मौत हो गई और चार अन्य घायल हो गए, किसानों के हमले में कुछ पुलिसवालों को भी चोटें आईं और कई वाहन क्षतिग्रस्त हो गए।

प्रदर्शनकारी किसान दिल्ली को आगरा से जोड़ने के लिए बनाए जा रहे 'ताज एक्सप्रेस वे' के लिए अधिग्रहीत की गई ज़मीन के उचित मुआवज़े की मांग कर रहे थे। प्रदर्शनकारी किसान एक्सप्रेस वे का निर्माण कर रही कंपनी के मथुरा जिले के नौहज़ील स्थित दफ्तर के बाहर धरना दे रहे थे। किसानों ने घोषणा की थी कि अगर उनकी मांगें नहीं मानी गईं तो वे निर्माण कंपनी के दफ्तर पर कब्जा कर लेंगे। किसान उग्र हो गए और मजदूरों को काम करने से रोक दिया। पुलिस का कहना है कि उग्र किसानों ने पुलिस पर पथराव भी किया।

हालात पर नियंत्रण पाने के लिए पुलिस को बल प्रयोग करना पड़ा। इसके बाद किसानों ने निर्माण कंपनी के दफ्तर में आग लगा दी। लेकिन अगर किसानों ने संयम और धैर्य से काम लिया होता तो हालात न तो बेकाबू होते और न ही पुलिस को बल प्रयोग का सहारा लेना पड़ता। संभव था किसानों की समस्याओं के निदान की दिशा में बात कुछ आगे भी बढ़ जाती। लेकिन ऐसा नहीं हो पाया। हालांकि ऐसा नहीं था कि किसानों की मांग नाजायज थी। लेकिन संयम और समझदारी के अभाव की वजह से एक्सप्रेस वे के निर्माण में लगी कंपनी के दफ्तर को आग के हवाले कर दिया गया। परंतु इससे न तो किसानों को कोई फायदा हुआ और न ही किसी और को। ऐसे ही एक मामले में किसानों की

आवाज को बुलंद करने के लिहाज से मेधा पाटकर के नेतृत्व में किसानों ने गुरुवार 22 मार्च 2007 को पश्चिम बंगाल के नंदीग्राम में किसानों पर हुई पुलिस फायरिंग के विरोध में दिल्ली के जंतर-मंतर पर धरना प्रदर्शन किया।

गौरतलब है कि इंडोनेशियाई सलीम समूह के प्रस्तावित विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईज़ेड) के लिए नंदीग्राम में भू-अधिग्रहण को लेकर हुए विरोध प्रदर्शन के दौरान 14 लोग मारे गए थे।

जंतर-मंतर पर इकट्ठा हुए किसानों ने नंदीग्राम के लोगों के प्रति समर्थन जताया और एसईज़ेड को महज एक धोखा करार दिया। इनका आरोप था कि किसानों की उपजाऊ ज़मीन औने-पौने दाम पर छीन कर पूंजीपतियों के लाभ के लिए दिया जा रहा है।

### **अधिकारों की लड़ाई**

नंदीग्राम मुद्दे से आगे भी किसानों ने कई ज्वलंत समस्याओं पर अपनी मांगें रखीं। शेतकारी संगठन, कर्नाटक राज्य रैयत संघ, किसान पंचायत जैसे संगठनों के कार्यकर्ता और आम किसान अपनी मांगें लेकर शायद इसलिए दिल्ली आए कि यहां से सरकार तक उनकी आवाज़ पहुंच पाएगी।

किसान विश्व व्यापार संगठन के दूसरे दौर की बातचीत से कृषि को बाहर रखने की मांग कर रहे थे। साथ ही वे बीटी कॉटन और दूसरे जैव परिवर्द्धित बीजों पर रोक, भारत-अमरीका कृषि समझौता रद्द करना, टिकाऊ खेती को प्रोत्साहन दिए जाने जैसी मांगें लेकर भी पहुंचे थे।

पंजाब से आए भारतीय किसान यूनियन नेता सरदार अजमेर सिंह लाखोवाल ने लाखों किसानों की मांग को सीधे शब्दों में रखते हुए कहा कि हमारी मांग यह है कि जो हम किसान पैदा करते हैं चाहे वो गेहूं हो, दाल हो या तेल के बीज हो उसका भाव या न्यूनतम समर्थन मूल्य थोक मूल्य सूचकांक के हिसाब से ही तय की जाए।

लाखोवाल की शिकायत थी कि किसानों से गेहूं तो सात रुपए प्रति किलो लिया जाता है। लेकिन गरीब को चौदह रुपए किलो बेचा जाता है जबकि जो गेहूं ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका से मंगाया जाता है वह 1150 रुपए प्रति क्विंटल लिया जाता है।

छोटे-छोटे गांवों से लोकतंत्र के मुख्यालय यानी दिल्ली पहुंचे कुछ

किसान हैरान परेशान दिखे तो कुछ के चेहरे पर बड़े शहरों के ताम-झाम से सकपकाहट साफ झलक रही थी।

किसान संगठनों के अलावा विस्थापित लोगों की आवाज़ बने कई गैर-सरकारी संगठन भी जुटे थे और उनकी पहल थी कि गृह-उद्योगों में लगे किसान अपनी कला भी दिखाएं और अपनी आजीविका भी कमाएं।

2001 की जनगणना के मुताबिक भारत की जनसंख्या 1,02,87,37,436 है तो वर्ष 2009 में हमारी जनसंख्या में कितनी बढ़ोत्तरी हो चुकी होगी इसका महज अनुमान ही लगाया जा सकता है। 2001 की जनगणना के मुताबिक भारत की कुल आबादी का तकरीबन सत्तर फीसदी आबादी गांवों में निवास करती है। लेकिन जितनी बड़ी तादाद में आम जनता गांवों में निवास करती है उस हिसाब से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास नहीं हुआ है, वजह चाहे जो भी हो। बुनियादी सुविधाओं के अभाव में लोग अलग-अलग तरह की समस्याओं का शिकार हो रहे हैं, जिसकी वजह से आम लोग असंतोष की भावना से ग्रसित होते जा रहे हैं। ऐसे में उनके इलाके में जब भी कोई विकास से जुड़े काम की शुरूआत की जाती है तो उन्हें लगता है कि इस काम से होने वाले मुनाफे से किसी और की तिजोरी भरी जाएगी।

उन्हें तो बस ज़मीन के बदले महज एक छोटी सी रकम भर दी जा रही है। किसी भी उद्योग या कोई परियोजना को शुरू करने के लिए किसानों की ज़मीन सरकार पहले भी लेती रही है। बदले में उन्हें मुआवजा दिया जाता है। लेकिन सरकार और किसानों के बीच होने वाली इस डील का आधार क्या होना चाहिए। किसान को उसकी जमीन के बदले किस दर से भुगतान किया जाना चाहिए। इसी बात को लेकर देश के अलग-अलग हिस्सों में सरकार और किसानों के बीच कई बार टकराव हो चुका है। किसानों की मांग है कि उनके जमीन का उचित मुआवजा दिया जाए। लेकिन जमीन के बदले सरकार जिस दर से किसानों को रुपयों का भुगतान कर रही है किसान उसे लेकर काफी गुस्से में हैं। इसी गुस्से की एक झलक बुधवार 13 अगस्त, 2008 को दिल्ली के नजदीक नोएडा में भी देखने को मिली। यहां उग्र किसानों की भीड़ को काबू में करने के दौरान चार किसानों की मौत हो गई।

वर्ष 2006 में इन किसानों की ज़मीन अधिग्रहीत हुई थी, मुआवज़े को नाकाफी बताते हुए किसान और अधिक धनराशि की मांग कर रहे

थे और इसी को लेकर उन्होंने ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण पर धरना दिया था। नोएडा के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक आर.के. चतुर्वेदी के मुताबिक घोड़ी बछेड़ा गांव के करीब एक हजार किसान ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण के कार्यालय पर उग्र प्रदर्शन कर रहे थे, भीड़ के पथराव में कई पुलिसकर्मी घायल हो गए और हालात को काबू में लाने के लिए फायरिंग करनी पड़ी। जबकि सरकारी प्रवक्ता ने कहा है कि नोएडा में अराजक तत्वों ने हिंसा फैलाई है।

किसानों को देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। ऐसे में उनकी आवाज को दबाने के बजाए उसे तवज्जो दिया जाना चाहिए क्योंकि किसानों की मांग को सीधे-सीधे गलत नहीं ठहराया जा सकता। किसानों की जमीन सरकार पहले ही अधिग्रहित कर चुकी है। ऐसे में अगर उन्हें उचित मुआवजा नहीं मिलेगा तो किसान के सामने जीवन-मरण का सवाल आ जाएगा।

अपनी वैध समस्याओं का हल तलाशने के लिए कर्नाटक के किसान भी कमर कस कर लड़ाई लड़ने के लिए तैयार खड़े मिले। यहां रासायनिक खाद और बीज की कमी के कारण किसानों ने विरोध प्रदर्शन किया। इस दौरान पुलिस के साथ झड़प में एक व्यक्ति की मौत हो गई।

ये किसान ताल्लुक कृषि उत्पाद विपणन सहकारी समिति के दफ्तर में उर्वरक लेने आए थे। लेकिन अचानक बिक्री रोक दिए जाने से किसान बेकाबू हो गए।

खरीफ़ की खेती के लिए राज्य में करीब सवा दो लाख टन खाद की जरूरत है। राज्य के अधिकारियों के अनुसार राज्य में केवल साढ़े उन्नीस हजार टन खाद ही उपलब्ध थी।

खाद में जारी कमी के विरोध में दावणगेरे में किसानों ने भी हड़ताल की थी। राज्य के धारवाड़ में भी एक ऐसा ही आंदोलन हिंसक हो गया था और लोगों ने तीन बसों को जला डाला था।

एक और जगह बंकापुर में भी पुलिस और किसानों के बीच झड़पें हुईं। इसमें आठ पुलिसकर्मियों समेत बीस लोग घायल हुए थे।

मंगलवार, 10 जून 2008 को कर्नाटक के हावेरी शहर में खाद-बीज की मांग कर रहे किसानों पर पुलिस फायरिंग में एक व्यक्ति की मौत हो गई और चार लोग घायल हो गए।

पुलिस का कहना है कि पहले उग्र किसानों को नियंत्रित करने के

लिए लाठी चार्ज और आंसू गैस के गोलों का सहारा लिया गया। लेकिन इससे बात नहीं बनी और फायरिंग करनी पड़ी।

शिगांव शहर में किसानों की भीड़ ने एक गोदाम में घुस कर उर्वरक, बीज और कीटनाशकों की थैलियां उठा लीं। गौर करने वाली बात है कि हाल के दिनों में वैध समस्याओं के निदान की खातिर आंदोलन की ज्यादातर घटनाएं शहरों में कम और ग्रामीण इलाकों में ज्यादा देखने को मिल रही हैं। इसके दो पहलू हैं। पहला ग्रामीण इलाकों में विकास का अभाव। दूसरा विकास के साथ पुनर्वास और उचित कीमत या मुआवजे को लेकर विवाद। इसका एक और पहलू भी हो सकता है। कई बार गांव के भोले-भाले किसान समाज विरोधी तत्वों के बहकावों में भी आ जाते हैं। लेकिन लोकतंत्र ने देश के सभी नागरिकों को इतने अधिकार दिए कि उसे न तो हिंसा पर उतारू होने की जरूरत है और न ही कानून हाथ में लेने की। परंतु यहां समस्या जानकारी और समझदारी की है। शिक्षित नहीं होने की वजह से किसान न तो तमाम जानकारी सही वक्त पर हासिल कर पाता है और न ही समझदारी और संयम का सहारा ले पाता है।

मध्य प्रदेश के रीवा जिले में रविवार, 23 सितंबर, 2007 को स्थानीय लोगों ने रोजगार की मांग को लेकर जमकर धरना प्रदर्शन किया। पुलिस कार्रवाई के दौरान एक व्यक्ति की मौत हो गई और तीस से अधिक लोग घायल हो गए। यह घटना जे पी सीमेंट की एक फैक्ट्री की है। स्थानीय लोग इन फैक्ट्रियों में नौकरी की मांग कर रहे थे।

रीवा के कलक्टर के मुताबिक स्थानीय लोगों के प्रदर्शन के दौरान छर्छरी लगने से एक व्यक्ति की मौत हो गई। हालांकि तत्कालीन आई जी पुलिस ने साफ किया कि ये मौत छर्छरी लगने से हुई थी और पुलिस छर्छरी का इस्तेमाल नहीं करती। गोली पुलिस की तरफ से चली या किसी असामाजिक तत्व ने मौके का फायदा उठाकर हालात को और बिगाड़ने की कोशिश की, ये बात पूरी तरह से साफ नहीं हो पाई। लेकिन एक बात जो उभर कर सामने आई वो ये कि इलाके में बेरोजगारी की समस्या चरम पर है। शायद यही वजह है कि लोग फैक्ट्री में मामूली नौकरी की खातिर धरना प्रदर्शन और कानून तक को हाथ में लेने पर उतारू हैं। इसके उलट रविवार, 28 अक्टूबर, 2007 को भारत के कई राज्यों से भूमि सुधारों की मांग को लेकर आंदोलन कर रहे किसानों और आदिवासियों ने समझदारी



और साहस का परिचय दिया। उन्होंने लोकतांत्रिक तरीके से अपनी बात दिल्ली में बैठी सरकार के कानों तक पहुंचाने के लिए बाकायदा देश के अलग-अलग हिस्सों से रैली निकाली और दिल्ली पहुंचे। अपने हक की आवाज़ बुलंद करने देश के 18 राज्यों से आए लगभग 22 हजार प्रदर्शनकारी दिल्ली के रामलीला मैदान में जमा हुए।

“भूख की जंग में, हम सब संग में” में नारे लगा रहे ये प्रदर्शनकारी छत्तीसगढ़, उड़ीसा, महाराष्ट्र, पंजाब, झारखंड, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार जैसे राज्यों से आए थे।

ग्वालियर से पैदल ही लगभग 400 किलोमीटर की यात्रा करके दिल्ली पहुंचे इन गरीब, आदिवासी और भूमिहीन किसानों की मांग, ज़मीनों से जुड़ी हुई थी।

प्रदर्शनकारियों की मांग है कि भूमि सुधार कानून लागू किये जाएं और वंचितों को उनका हक दिलाने के लिए एक राष्ट्रीय भूमि आयोग का भी गठन किया जाए जो भूमि विवादों का जल्दी निपटारा करें और जमीन का दोबारा आबंटन करें।

गुरुवार, 22 फरवरी 2007 को दिल्ली के जंतर-मंतर पर धरना दे रहे अनंतनाग के मोहम्मद लतीफ़ वाणी की मांग थी कि उनके लापता भाई गुलाम नबी वाणी के बारे में प्रशासन जानकारी दे, वे अकेले नहीं आए थे और भी कई लोग थे जो अपने परिजनों के बारे में जानकारी चाहते थे। सड़क के दूसरी ओर कश्मीरी पंडितों का प्रदर्शन भी चल रहा था, हालांकि लोग बहुत कम थे लेकिन नाराज़गी उनकी भी साफ़ थी।

पंडितों का कहना था कि उनके मानवाधिकार की किसी को कोई चिंता नहीं। 1990 के दशक में चरमपंथ का दौर शुरू होने के बाद लाखों की संख्या में कश्मीरी पंडित घाटी छोड़ने पर मजबूर हुए थे। तब से लेकर आज तक लाखों की तादाद में कश्मीरी पंडित राजधानी सहित देश के अलग अलग कोनों में विस्थापितों की तरह शिविरों में जिंदगी गुजर बसर करने को मजबूर हैं उन्होंने कभी भी अपने अधिकार और मांग के समर्थन में हिंसा का सहारा नहीं लिया। इसके बावजूद न तो केंद्र सरकार और न ही जम्मू कश्मीर की सरकार उन्हें वापस कश्मीर में बसाने और सुरक्षा के पुख्ता इंतजाम करने की दिशा में कोई ठोस कदम उठाने का भरोसा दे रही है।

इन तमाम घटनाओं से अलग शनिवार 07 अगस्त 2004 को भारत

के दक्षिणी राज्य आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद में गरीब परिवारों के लगभग 300 ऐसे बच्चों ने सरकार से मुफ्त इलाज की मांग करते हुए शनिवार को प्रदर्शन किया जो दिल के मरीज़ थे। ये वो बच्चे वो थे जिनकी जिंदगी दिल की बीमारी की वजह से दांव पर लगी हुई थी।

लेकिन मौत से बचने की इस जद्दोजहद के दौरान प्रदर्शन स्थल पर ही एक बच्चे की मौत हो गई।

इन गरीब बच्चों के मुफ्त इलाज की मांग को लेकर सरकार पर दबाव डालने के मकसद से देश भर से लगभग 300 दिल के मरीज़ बच्चों और उनके अभिभावकों को इकट्ठा किया गया था।

लेकिन करीमनगर से आए 14 साल के शोभन बाबू की मौत विरोध प्रदर्शन शुरू होने से पहले ही दिल का दौरा पड़ने से गई, जिससे प्रदर्शन स्थल पर तनाव बढ़ गया।

## गुस्सा

बीमार बच्चों को सरकारी और निजी अस्पतालों में पहुंचाने के लिए अधिकारियों ने 30 एंबुलेंस गाड़ियों का भी इंतज़ाम किया था। लेकिन प्रदर्शनकारियों ने उनका रास्ता रोक दिया।

बाद में पुलिस ने हस्तक्षेप करके शोभन बाबू के शव को अस्पताल पहुंचाया और गंभीर रूप से बीमार 50 अन्य बच्चों को भी इलाज के लिए अस्पताल भेजा गया।

मृतक शोभन बाबू के पिता टी रमेश ने फूट-फूट कर रोते हुए बताया कि वे तो यह खबर सुनकर हैदराबाद आए थे कि वहां दिल के मरीज़ बच्चे और उनके अभिभावक इकट्ठा हो रहे हैं। उन्होंने कहा कि इस खबर को सुनकर उनके मन में उम्मीद की एक किरण जागी थी कि उनके बेटे को शायद नई जिंदगी मिल जाए लेकिन उसे तो बेवक्त की मौत मिल गई।

लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपनी वैध समस्या के समाधान की खातिर न तो कोई हंगामा खड़ा करते हैं और न ही हिंसक वारदातों का ही सहारा लेते हैं। वो तो बस गांधी जी के तरीके से इंसाफ की लड़ाई लड़ने में यकीन रखते हैं। चाहे इसके लिए कितना भी वक्त क्यों न लगे। न्याय की आस में मुन्नालाल आठ नवंबर, 1995 यानी 15 बरस से लखनऊ में विधानसभा के सामने धरनास्थल पर खुले आसमान के नीचे

बैठे हैं, मुन्नालाल का मनोबल अभी तक नहीं टूटा है, यह एक बड़ी बात है।

उन्हें यह बताते हुए खुशी और गर्व है कि उन्होंने लंबे समय तक धरना देने का कटोरी देवी का रिकार्ड तोड़ दिया है वह अपने को 'प्रथम धरनाकारी उत्तर प्रदेश' कहते हैं।

उनका दावा है कि उनसे ज्यादा समय तक किसी ने धरना नहीं दिया इसलिए उनका नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स में दर्ज किया जाए।

मथुरा की एक अध्यापक कटोरी देवी ने 14 साल, दो महीने तक विधानसभा के सामने सत्याग्रह किया, पुलिस की मार खाई, हाईकोर्ट से भी वह हार गई।

फिर गवर्नर मोतीलाल वोरा ने वर्ष 1996 में नौकरशाही की आपत्ति को नजरअंदाज करते हुए कटोरी देवी को न्याय दिलाया। कटोरी देवी की नौकरी बहाल हुई, आर्थिक मुआवज़ा मिला।

फिर भी मुन्नालाल निराश नहीं हुए हैं, वो कहते हैं कि एक न एक दिन न्याय जरूर मिलेगा। मुन्नालाल का कहना है कि वो 20 सितंबर, 1983 को सिंचाई विभाग के हैदरगढ़-बाराबंकी खंड में दैनिक वेतन टाइपिस्ट के पद पर नियुक्त हुए थे। आरक्षण कोटे में नियुक्ति नियमित कराने का प्रयास किए मगर 1989 में नौकरी से निकाल दिए गए। उनका कहना है कि साथ के सभी 59 लोग बहाल हो गए हैं, अकेले वो ही सड़क पर हैं .....और ये अकेले नहीं मुन्नालाल लोकतंत्र में लोकतांत्रिक तरीके से लड़ने वाले और अपने साथ न्याय का इंतजार करने वाले अकेले सिपाही नहीं है। ऐसी सूची में कितने ही नाम हैं, मसलन, एक लखनपाल परिवार की ही बात करें। उमा अपने पति सुप्रिय लखनपाल और बेटे सौहार्द लखनपाल के साथ 12 बरस से विधानसभा के सामने धरने पर हैं, इसी चक्कर में बेटा स्कूल नहीं गया। बेटा 16 साल का हो गया है। वह रोज-रोज देखता है कि व्यवस्था से न्याय नहीं मिलता बल्कि उल्टे पुलिस की लाठी और जेल मिलती है। सुप्रिय लखनपाल का कहना है कि हमारी तो सरकार से कोई पैसे या नौकरी की मांग भी नहीं है। हम तो सिर्फ हाईकोर्ट के आदेश का पालन कराने के लिए बैठे हैं।

उमा लखनपाल के पिता उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री डाक्टर संपूर्णानंद के निजी सचिव थे, उनका एक मकान है। वसीयत के मुताबिक दो

भाइयों के साथ-साथ उमा लखनपाल को भी एक तिहाई हिस्सा मिलना था। पर आरोप है कि बड़े भाई ने पुलिस की मदद से उन्हें जबरन मकान से बेदखल कर दिया। सुप्रिय लखनपाल का कहना है कि हाईकोर्ट एक दर्जन बार उनके पक्ष में आदेश दे चुका है कि प्रशासन उनको कब्जा वापस दिलाए और बिना किसी कोर्ट आर्डर के उन्हें बेदखल न किया जाए। मगर प्रशासन यह आदेश लागू नहीं कराता। सुप्रिय लखनपाल कहते हैं, 'हम तो मजबूरी में यहां बैठे हैं क्योंकि हमारे पास और कोई जगह नहीं, सुप्रिय बरेली के एक अखबार के संपादकीय विभाग में नौकरी करते थे। इस संघर्ष के चलते वो नौकरी भी चली गई। पुलिस ने कई बार गिरफ्तार करके जेल भी भेजा। सुप्रिय का कहना है कि धरना स्थल पर बैठना बड़ा मुश्किल काम है। न ठीक से बैठने कि व्यवस्था, न शौचालय आदि की व्यवस्था और न नहाने की। कई बार जब पुलिस यहां प्रदर्शन करने वालों पर लाठी चलाती है तो भगदड़ मच जाती है और उनका तख्त तम्ब उलटा-पुलटा हो जाता है। आम तौर पर तो अब कोई ज्ञापन लेने भी नहीं आता।

### **आखिर कब तक**

ऐसे कितने ही नाम हैं जिनका पता है लोकतंत्र में अपना विरोध जताने और हक मांगने के सत्याग्रही तरीके की ऐसी जगह जहां लोग धरने पर बैठते हैं। सोलह साल के सौहार्द लखनपाल में मुन्नालाल या अपने मां बाप जैसा धैर्य नहीं है। उसकी तरुणाई को यह सब बर्दाश्त नहीं, वह कहता है मैं तो माओवादियों में शामिल हो जाऊंगा। वे लोग हथियार लेकर जनता की लड़ाई लड़ रहे हैं। 12 साल से लोकतांत्रिक लड़ाई लड़कर देख लिया।

सौहार्द लखनपाल अकेला नहीं है, ऐसे बहुत से लोग हैं जो सोचते हैं कि अब आजाद हिन्दुस्तान में धरना प्रदर्शन और सत्याग्रह कारगर हथियार नहीं रहे।

## अशिक्षा, बेरोजगारी और हिंसा

समाज के विकास में अशिक्षा, बेरोजगारी और हिंसा सबसे बड़ी बाधा है। ये ऐसी समस्या है जो समाज में मौजूद सभी समस्याओं की जननी है। यानि किसी भी समस्या के मूल में इन तीनों की भूमिका सबसे अहम होती है। इसी बात को ध्यान में रखकर ब्रिटिश शासन से मुक्ति के वक्त सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में देखा गया था। तब यह भी महसूस किया गया था कि इसके बिना देश का विकास संभव नहीं है। यही वजह थी कि भारतीय संविधान का अनुच्छेद 45 स्पष्ट शब्दों में राज्य को निर्देशित करता है कि संविधान लागू होने के दस वर्षों के भीतर (अर्थात् सन 1960 तक) चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाए। वर्ष 1993 में उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (कैपीटेशन फीस केस) में अनुच्छेद 45 की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने एक ऐतिहासिक निर्णय दिया। कोर्ट ने कहा कि चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार है। अतः राज्य के लिए इसकी व्याख्या करना अनिवार्य है। इसी वर्ष दिसंबर में नौ सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों के सबके लिए शिक्षा शिखर सम्मेलन में जारी दिल्ली घोषण पत्र में सन 2000 ई. तक इस लक्ष्य को पाने की कसमें खाई गईं और इस हेतु प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने की बातें की गईं। कहना न होगा कि मेजबान होने के नाते भारत ने कुछ ज्यादा ही ऊंची आवाज़ में कसमें खाईं।

लेकिन अनुच्छेद 45 जैसे स्पष्ट संवैधानिक प्रावधान, उस पर आधारित उपरोक्त फैसले, विभिन्न रिपोर्टों और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर सरकारी कसमों वादों के बावजूद लोकव्यापी प्राथमिक शिक्षा एक स्वप्न ही साबित हो रही है। सरकार बजाए सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा के अपने वादे को पूरा करने के लिए अनौपचारिक शिक्षा एवं साक्षरता

अभियानों पर ही जोर दे रही है, जैसा कि नई शिक्षा नीति के दस्तावेज से भी पता लगता है। यद्यपि स्कूल में नामांकन लेने वाले बच्चों का प्रतिशत बढ़ा है, फिर भी स्कूल तक नहीं पहुंचने वाले बच्चों की कुल संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। वर्ष 1989-90 तक 6 से 11 वर्ष के आयुवर्ग में कुल 12.20 करोड़ बच्चों में 9.70 करोड़ ने नामांकन लिया जबकि 11 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के कुल 7.30 करोड़ बच्चों में से सिर्फ 3.40 करोड़ बच्चों ने ही दाखिला लिया। इस तरह देश के करीब एक चौथाई बच्चे स्कूल में कभी कदम ही नहीं रखते हैं।

आंकड़े बताते हैं कि लड़कियां, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत ही कम दाखिला ले पाती हैं। अधिकांश राज्यों में जबकि 80 प्रतिशत लड़के नामांकन लेते हैं, मात्र 50-55 प्रतिशत लड़कियां ही नामांकन ले पाती हैं। ये तो हुई प्राथमिक शिक्षा की बात। उच्च विद्यालयों तक तो मात्र 15-16 प्रतिशत लड़कियां ही पहुंच पाती हैं। इसका मूल कारण हमारी रूढ़िगत सामाजिक मान्यताएं हैं, जिनके चलते आज भी लड़कियों को घर की चारदीवारी के अंदर कैद करके रखने की प्रवृत्ति हावी है। यही वह बिंदु है जहां सामाजिक आंदोलनों और शिक्षा का संबंध महत्वपूर्ण हो जाता है। सच पूछिए तो दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। अगर सामाजिक आंदोलनों द्वारा लोगों का रूढ़िवादी नज़रिया बदल दिया जाए तो लड़कियां अधिकाधिक संख्या में स्कूल जाएंगी। दूसरी ओर, अगर स्त्री शिक्षा का प्रसार होगा तो सामाजिक परिवर्तन भी तेजी से होंगे। केरल इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। जहां तक अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों का प्रश्न है। इस संबंध में कोई स्पष्ट आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन एक अनुमान के मुताबिक इस वर्ग के लगभग 70 प्रतिशत बच्चे स्कूलों में नामांकन से वंचित रह जाते हैं। यह गहन सामाजिक विषमता का द्योतक है और इसके बड़े भयंकर दुष्परिणाम हो सकते हैं। समकालीन इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि जब भी किसी देश का कोई वर्ग विशेष सामाजिक, आर्थिक या शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ेपन का शिकार हुआ है तो उसमें व्यवस्था के प्रति अविश्वास पैदा हुआ है और इसके परिणामस्वरूप अलगाववादी आंदोलनों का जन्म हुआ है। अतः समस्या के इस पहलू पर गंभीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है। आमतौर पर 5-6 वर्ष की अवस्था में बच्चे स्कूल पढ़ना शुरू करते हैं। लेकिन उनमें से कितने 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा जारी

रख पाते हैं। आंकड़े बताते हैं कि नामांकन लेने वालों में से सिर्फ 52 प्रतिशत बच्चे पांचवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी कर पाते हैं जबकि आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी करने वालों का प्रतिशत मात्र 35 है और लड़कों की तुलना में लड़कियां ज्यादा स्कूल छोड़ती हैं। अनुसूचित जाति और जनजाति में ऐसे बच्चों की संख्या और अधिक है। 6-11 वर्ष के आयुवर्ग के अनुसूचित जाति जनजाति के स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में लड़के और लड़कियों का प्रतिशत क्रमशः 43.28 एवं 49.42 है।

प्रो. रामकृष्णन रिपोर्ट के अनुसार स्कूल छोड़ने की अधिकांश घटनाएं पहली कक्षा में ही होती हैं और ऊपरी कक्षाओं में जाने के साथ-साथ घटती जाती हैं। कुछ अन्य रिपोर्ट भी इस बात की पुष्टि करती हैं कि बच्चा अगर एक साल तक स्कूल जाने का दम रखता है तो उसके प्राथमिक शिक्षा पूरी करने की संभावना अधिक है बशर्ते कि अन्य बातें पूर्ववत् रहें।

सवाल उठता है कि आखिर ये बच्चे स्कूल क्यों छोड़ते हैं। इसी से जुड़ा हुआ एक और प्रश्न यह है कि वे स्कूल खुद छोड़ते हैं या माता-पिता द्वारा छुड़ा दिए जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर पाना मुश्किल है, क्योंकि अधिकांश मामलों में जहां स्कूल छोड़ने वाले बच्चे घर के कामों या रोजी-रोटी कमाने में लगाए जाते हैं, यह स्पष्ट नहीं है कि उन्हें स्कूल से अलग किया गया है। स्कूल छोड़ने वाले बच्चों के माता-पिता के निरपवाद रूप से निरक्षर या अशिक्षित होने से यह अंतर कर पाना और कठिन हो जाता है।

आमतौर पर शिक्षाविद यह मानते हैं कि ऐसा आर्थिक मजबूरियों के कारण होता है। लेकिन प्रो. रामकृष्णन रिपोर्ट समस्या की कुछ दूसरी ही तस्वीर पेश करती है। रिपोर्ट के मुताबिक स्कूल छोड़ने वाले दो-तिहाई बच्चे मजदूरी कमाने के बजाए अन्य कारणों से ऐसा करते हैं। इसलिए इसे मात्र आर्थिक पिछड़ेपन का मुद्दा मानकर रद्द नहीं किया जा सकता। इसमें संदेह नहीं है कि आर्थिक मजबूरियां निर्णायक कारण हो सकती हैं लेकिन प्रो. रामकृष्णन रिपोर्ट के आलोक में इस समस्या पर नए दृष्टिकोण से विचार करने की आवश्यकता है।

### **प्राथमिक शिक्षा बनाम सरकारी नीति**

सौ बातों की बात यही है स्कूल की ही राह सही है। सरकार की

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 40

ओर से प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के मकसद से तैयार किया यह विज्ञापन वाकई में प्रेरणादायी है। लेकिन महानगरों और शहरी स्कूलों को छोड़ दें तो ग्रामीण इलाके के स्कूलों की हालत देखकर आप देश में प्राथमिक शिक्षा की बहाली का सहज ही अंदाजा लगा सकते हैं। देश में प्राथमिक शिक्षा की हकीकत इस सरकारी विज्ञापन में कहीं गई बातों से बिलकुल मेल नहीं खाती हैं। स्कूल का मतलब सिर्फ स्कूल भवन, किताबें और नियमित उपस्थिति ही नहीं है, इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग तो बच्चे हैं। वस्तुतः यह एक ऐसा समय होता है जब बच्चे तेजी से आगे बढ़ रहे होते हैं और कई मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह प्रारंभिक काल किसी व्यक्ति के भावी जीवन के लिए बड़ा ही निर्णायक होता है। इसलिए यह जानना बड़ा ही महत्वपूर्ण हो जाता है कि बच्चे खुद इस संबंध में क्या सोचते हैं। क्योंकि अगर बच्चे पढ़ाई से घृणा करते हों और स्कूल जाने को सिर्फ एक अरुचिकर अनुष्ठान मानते हों तो उन्हें स्कूल भेजने का कोई फायदा नहीं है। आखिरकार बच्चा जब तक चाहेगा नहीं तब तक उसे प्रभावकारी शिक्षा कैसे दी जा सकती है।

इस संबंध में प्रो. रामकृष्णन रिपोर्ट से एक दिलचस्प बात सामने आती है। रिपोर्ट के अनुसार स्कूल छोड़कर काम में लगने वाले अधिकांश बच्चे स्कूल की पढ़ाई से अधिक शारीरिक परिश्रम को पसंद करते हैं और स्कूल वापसी की उनकी कोई इच्छा नहीं है तो क्या बच्चे सीखने की प्रवृत्ति खो चुके हैं। नहीं ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इसे मानना समूचे बाल विज्ञान को नकारने के बराबर होगा। जिसके अनुसार सीखना बच्चे की जन्मजात प्रवृत्ति है और सबसे अच्छी तरह से वे तब सीखते हैं जब वे अपने कृत्य का आनंद लेते हुए सीखते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण उनके द्वारा मातृभाषा का सीखना है जिसे वे तुतलाते-तुतलाते सीख डालते हैं।

प्रख्यात शिक्षाविद मारिया मांटेसरी एवं जान हॉल्ट के अनुसार जिज्ञासा बच्चे की जन्मजात प्रवृत्ति है। पर जिस ढंग की शिक्षा आज हम बच्चों को दे रहे हैं उससे उनकी मूल प्रवृत्ति पर कुठराघात हो रहा है। शिक्षक और माता-पिता पढ़ाई में बच्चों की सफलता और असफलता को क्रमशः पारितोषिक और दंड से जोड़ देते हैं, जिससे जिज्ञासा का स्थान चिंता ले लेती है। ऊपर से स्कूल की ओर से अभिभावक को भेजा गया प्रोग्रेस रिपोर्ट तो बच्चों को और आतंकित करता है। बच्चों की गलतियों



की बजाए अनदेखी करके उन्हें प्रोत्साहित करने के, गलतियों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट कराया जाता है, जिससे शिक्षा के प्रति उनमें अरुचि पैदा होती है।

इसका दूसरा महत्वपूर्ण कारण हमारा जर्जर प्राथमिक शिक्षा तंत्र है, जिसमें संरचनागत खामियों की भरमार है। हमारे यहां न तो पर्याप्त संख्या में स्कूल हैं और न ही उचित संख्या में शिक्षक। जो स्कूल हैं भी तो उनमें से अधिकांश एक कमरों वाले हैं या फिर पेड़ों के नीचे चलते हैं। इन स्कूलों में ब्लैकबोर्ड और पेयजल जैसी मूलभूत सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं। जब नई शिक्षा नीति के तहत ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड लागू किया गया था तब सरकार ने यह वादा किया था कि प्रत्येक एक किलोमीटर की परिधि में एक स्कूल खोला जाएगा। इसमें दो कमरे और दो शिक्षक होंगे, जिनमें से एक महिला होगी। तब ब्लैकबोर्ड और खेल सामग्री सहित पठन-पाठन के आवश्यक उपकरणों के मुहैया कराने की बातें भी की गई थीं।

हालांकि सरकारी आंकड़ों में यह दावा किया गया है कि 64 फीसदी स्कूलों में सारी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करा दी गई हैं। लेकिन एनसीईआरटी की एक रिपोर्ट में सरकारी दावे का खोखलापन स्पष्ट हो जाता है। रिपोर्ट के मुताबिक 50 फीसदी से अधिक प्राथमिक स्कूलों के पास अपना भवन नहीं है, 40 प्रतिशत स्कूल फर्नीचर और ब्लैकबोर्ड रहित है, 54 प्रतिशत स्कूलों में रखरखाव की सुविधाएं नहीं हैं और 35 प्रतिशत स्कूल ऐसे हैं जहां सिर्फ एक ही शिक्षक है। जो शिक्षक है भी तो उनमें से अधिकांश अप्रशिक्षित हैं नतीजा यह है कि वे बच्चों को प्रेरित करने के बदले उन्हें भयभीत कर देते हैं, जिससे बच्चे स्कूल को भय की दृष्टि से देखते हैं।

प्राथमिक शिक्षा की बदहाली का एक महत्वपूर्ण कारण वित्तीय संसाधनों की कमी भी है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सकल उत्पाद का 7.86 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया गया था, जिसमें से 56 प्रतिशत खर्च प्राथमिक शिक्षा पर था। सातवीं पंचवर्षीय योजना आते-आते यह राशि घटकर क्रमशः 2.55 प्रतिशत और 29 प्रतिशत हो गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह राशि और भी कम हो गई। यही सिलसिला आगे भी जारी है। प्राथमिक शिक्षा पर कुल खर्च का 96 प्रतिशत तो सीधे सीधे शिक्षकों और शिक्षकेतर कर्मचारियों के वेतन पर खर्च हो जाता है। शेष बची राशि

से प्राथमिक शिक्षा की स्थिति में सुधार की आशा नहीं की जा सकती। कोठारी आयोग ने 1986 तक शिक्षा के क्षेत्र में (बढ़ते हुए क्रम में) 6 प्रतिशत निवेश की बात कही थी। लेकिन सरकार ने इस पर सही तरीके से ध्यान नहीं दिया।

गरीबी की वजह से खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों के पास न तो किताबें होती हैं और न ही कॉपियां। जो किताबें उनके पाठ्यक्रम में शामिल की जाती हैं वे इतनी पाण्डित्यपूर्ण होती हैं कि बच्चे बोर हो जाते हैं। शिक्षाविदों के अनुसार किसी भी क्रिया-कलाप के प्रति बच्चे लगातार 15 मिनट से अधिक देर तक आकर्षित नहीं रह सकते हैं। लेकिन पूरे 45 मिनट तक कक्षा में बैठने हेतु उन्हें विवश किया जाता है, जिससे उनमें पढ़ाई के प्रति ऊब पैदा होती है खेल आदि की सुविधा न होने के कारण उनकी रचनात्मकता पर बुरा असर पड़ता है। अतः जब तक पठन-पाठन को आनंददायक नहीं बनाया जाएगा तक तब शिक्षा प्रभावकारी नहीं हो सकती।

### **बच्चों में स्कूल के प्रति बेरूखी के लिए जिम्मेदार कौन?**

जहां अधिकांश बच्चे स्कूल छोड़ने का कारण शिक्षक का भय बताते हैं, वहीं अधिकांश शिक्षक इसका दोष माता-पिता की उदासीनता और लापरवाही पर मढ़ते हैं। जब यही प्रश्न माता पिता से पूछा जाता है तो उनमें से अधिकांश का कहना है कि उनके बच्चे पढ़ने में सक्षम नहीं हैं इसलिए उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। लेकिन एक बात साफ है कि बच्चे सीखने में अक्षम नहीं होते हैं। वस्तुतः स्कूल छोड़ने वाले अधिकांश बच्चों के माता-पिता अशिक्षित ग्रामीण होते हैं, जिन्हें शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में पता नहीं है। वे इस स्थिति में भी नहीं होते हैं कि स्कूलों के ठीक से चलने की मांग कर सकें। वे शिक्षा की अनिवार्यता को समझने हेतु बच्चे पर उसका स्पष्ट असर देखना चाहते हैं। सच पूछिए तो वे अपने बच्चों को स्कूल भेजते भी हैं तो सिर्फ इसलिए कि समाज में जो अच्छे लोग हैं वे पढ़े-लिखे हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक माता-पिता के दिमाग में यह बात बैठाई जाए कि उनका बच्चा पढ़ सकता है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक यह कहने का कोई मतलब नहीं है कि प्रत्येक बच्चे को अवश्य पढ़ना चाहिए। यह काम सिर्फ सरकारी प्रयासों से संभव नहीं, इसमें स्वयंसेवी संगठनों का योगदान भी

अपेक्षित है। अब रही बात शिक्षकों की तो भारत में प्राथमिक शिक्षा की जो स्थिति है उसमें एक शिक्षक की गांवों में पहले जैसी इज्जत नहीं रह गई है। वे महसूस करते हैं कि प्रोन्नति के रूप में उनकी महत्वकांक्षा के फलीभूत होने की संभावनाएं भी क्षीण हैं। ज्यादा से ज्यादा वे अपने कैरियर के अंतिम चरण में कुछ समय के लिए प्रधानाध्यापक बन सकते हैं। इससे उनका उत्साह ठंडा पड़ जाता है। दूसरे अधिकांश स्कूलों में सिर्फ एक ही शिक्षक होने से उन पर काम का बोझ ज्यादा रहता है। तमिलनाडु जैसे राज्य में जहां स्कूल में बच्चों को दोपहर का पौष्टिक आहार और मुफ्त पुस्तकें भी दी जाती हैं, शिक्षकों पर प्रशासनिक बोझ भी बढ़ जाता है फिर अधिकांश शिक्षक अप्रशिक्षित होते हैं, जो प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक भी होते हैं उनका प्रशिक्षण अपर्याप्त होने के कारण वे कक्षा को प्रभावकारी ढंग से संचालित नहीं कर पाते हैं। रिक्रेशर कोर्स आयोजित करने का अनुष्ठान भी बहुत फलदायी सिद्ध नहीं हो पा रहा है। रही-सही कसर शिक्षकों की लापरवाही से पूरी हो जाती है। स्कूल से गायब रहने की प्रवृत्ति उनमें बढ़ती ही जा रही है। गांवों के अभिभावकों के अशिक्षित होने के कारण उन पर कोई सामाजिक अंकुश नहीं रह गया है। इसलिए स्थिति में सुधार हेतु अभिभावक-शिक्षक संघ मंचों को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। साथ ही कई संरचनागत परिवर्तन भी करने होंगे। जैसे स्कूलों और शिक्षकों की संख्या में वृद्धि, बेहतर प्रशिक्षण व्यवस्था, पाठ्यक्रम निर्माण में शिक्षकों की भागीदारी आदि। अगर ये सारे सुधार समय रहते नहीं किए गए तो जब दुनिया के देश मंगल और बृहस्पति पर पहुंचकर शोध कर रहे होंगे, हम दुनिया के निरक्षरों की सबसे बड़ी फौज को साक्षर करते हुए अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम चला रहे होंगे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक शिक्षा को एक बार फिर से राष्ट्रीय एजेंडे का केंद्रबिंदु बनाया जाए जैसा कि 1990 में नई शिक्षा नीति की समीक्षा के लिए गठित समिति ने सिफारिश की थी। रिपोर्ट में इसके लिए व्यावहारिक सुझाव भी दिए गए हैं पर सरकार बजाए उस पर अमल करने के अनुच्छेद 45 की मनमानी व्याख्या करके अपनी जिम्मेदारी को कक्षा 1 से 8 तक के बच्चों को शिक्षा देने तक सीमित करती जा रही हैं। उल्लेखनीय है कि रिपोर्ट में की गई सिफारिश के अनुसार 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों की शिक्षा को भी निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के दायरे में शामिल किया जाए।

अब देखना यह है कि मानव संसाधन मंत्री इस चुनौती को किस रूप में लेते हैं और अनुच्छेद 45 के संवैधानिक निर्देश को किस तरह पूरा करते हैं।

लेकिन हाल के दिनों में देश के विभिन्न हिस्सों में छोटे-छोटे मुद्दों को लेकर सामाजिक स्तर पर भड़क रही हिंसा को बुनियादी तौर पर आम लोगों में शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं होने से जोड़कर भी देखा जा रहा है। क्योंकि आमतौर पर यह देखा गया है कि शिक्षित समाज पहली नज़र में हिंसा को अपनी मांगें मंगवाने के लिए एक मात्र हथियार के रूप में प्रयोग में लाने से परहेज करता है। शिक्षा इंसान को अंदर से जागरूक और जिम्मेदार बनाती है। वह इंसान को किसी भी मुद्दे पर कुछ भी करने से पहले उसके विभिन्न पहलुओं के बारे में सोचने समझने के लिए विवश करती है। यही वजह है कि शिक्षित समाज लोकतांत्रिक तरीकों से अपनी आवाज़ उठाने और हक की लड़ाई लड़ने में ज्यादा यकीन करता है। लेकिन कहीं-कहीं ऐसे भी मामले देखने को मिले हैं, जहां बेरोजगारी की वजह से कई बार युवा वर्ग हिंसा का सहारा लेने से भी परहेज नहीं करते हैं। मध्यप्रदेश के रीवा में हुई हिंसक वारदात इसका जीता-जागता उदाहरण है, जहां रोजगार की मांग को लेकर युवाओं के हिंसक प्रदर्शन के दौरान झड़प में एक व्यक्ति की मौत हो गई।

## हिंसा और न्यायपालिका

एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था जहां आम लोगों को अदालत से न्याय पाने के लिए कई सालों तक इंतजार करना पड़े, वहां की जनता में असंतोष पनपना लाजिमी है। प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने भी कानून, न्याय और आम आदमी विषय पर नई दिल्ली में 27 मार्च 2010 को आयोजित एक सेमिनार में कहा कि न्याय के बिना लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। उन्होंने कहा कि हमारे यहां लोकतंत्र में प्रेस को पूरी आजादी दी गई है। न्यायपालिका भी पूरी तरह स्वतंत्र है। इसके अलावा चुनाव आयोग और महालेखा नियंत्रक और परीक्षक जैसे स्वायत्त संस्थान हैं। जो विभिन्न स्तरों पर अदालतों में लंबित मामलों की बढ़ती तादाद की वजह से लोगों को न्याय पाने के लिए लंबा इंतजार करना पड़ रहा है।

देश भर के विभिन्न अदालतों में तीन करोड़ से भी अधिक मामले लंबित हैं। प्रधानमंत्री ने कहा कि आम लोगों को न्याय मिलने में हो रही देरी और उसकी वजह से बढ़ रही दूसरी वैध समस्याओं से निजात पाने के इरादे से केंद्र सरकार ने ग्राम न्यायालय अधिनियम पारित किया है। इसके तहत पंचायत स्तर पर देश भर में पांच हजार अदालतें स्थापित की जाएंगी। इसके अलावा अलग-अलग राज्यों में 71 अतिरिक्त सीबीआई अदालतें भी शुरू की जाएंगी। उन्होंने कहा कि ग्राम न्यायालय अधिनियम से अदालतों में लंबित मामलों का तेज़ गति से निपटारा होगा और आम जनता को जल्दी न्याय मिल सकेगा। कानून का लाभ आम लोगों को मिलना चाहिए। ऐसा नहीं होने पर कानून का मतलब कागज पर लिखे कुछ शब्दों के बराबर रह जाएगा।

केंद्र सरकार की लाख कोशिश के बावजूद कई ऐसे राज्य हैं, जो ग्राम न्यायालयों की स्थापना को लेकर गंभीर नहीं हैं। ग्राम न्यायालय एक्ट के नोटिफिकेशन के 6 महीने बीत जाने के बाद भी महज चार राज्यों ने इस दिशा में कदम आगे बढ़ाया है। जबकि पांच अन्य राज्यों ने कई

कारणों से ग्राम न्यायालय के गठन का विचार छोड़ दिया है। गौरतलब है कि 2 अक्टूबर 2009 की अधिसूचना को नोटिफिकेशन के बाद देश भर में पांच हजार ग्राम न्यायालयों के गठन की बात कही गई थी। कानून मंत्रालय ने जो आंकड़े जुटाए हैं उसके मुताबिक चार राज्यों में कुल 95 ग्राम अदालतों का गठन किया गया। जबकि दिल्ली और आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों ने ग्राम न्यायालयों की स्थापना में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। दिल्ली सरकार ने कानून मंत्रालय को दिए जवाब में कहा कि राज्य के अधिकांश क्षेत्र शहरी होने के कारण ग्राम न्यायालय के स्थापना की जरूरत नहीं है। जबकि आंध्रप्रदेश सरकार ने कहा कि स्थापित व्यवस्था में ग्राम न्यायालय के वजूद की जरूरत ही नहीं है। जिन अन्य राज्यों ने ग्राम न्यायालयों की स्थापना में रूचि नहीं दिखाई है उनके नाम इस प्रकार हैं - तमिलनाडु, उत्तराखंड और चंडीगढ़।

ग्राम न्यायालयों की स्थापना में मध्य प्रदेश 45 और राजस्थान 45 सबसे आगे हैं। जबकि महाराष्ट्र में 9 और उड़ीसा में 1 ग्राम न्यायालय की स्थापना की गई है। फिलहाल 28 राज्यों में से सिर्फ 15 ने कानून मंत्रालय की ओर से भेजे गए पत्र का जवाब दिया है। झारखंड सरकार ने इस संबंध में मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई है। जबकि उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल सरकार ने ग्राम न्यायालयों की स्थापना की बात कही है। लेकिन इसके लिए केंद्र से मदद की मांग भी कर दी है। संसद ने दिसंबर 2008 में ग्राम न्यायालय विधेयक पारित कर कानून के तहत पंचायत स्तर पर एक मोबाइल कोर्ट की स्थापना का प्रावधान किया है।

देश के भीतर विभिन्न हिस्सों में बढ़ रही समस्याओं पर चिंता जताते हुए वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने भी न्यायपालिका को और अधिक मजबूत बनाने की जरूरतों पर बल दिया। उन्होंने कहा कि न्यायपालिका पर काम दबाव काफी बढ़ गया है। उनके मुताबिक देश के समाने पहली चुनौती अदालतों में सालों से लंबित पड़े मामलों का जल्द से जल्द निपटारा करने की है, जिसकी वजह से अदालतों में कई वर्षों से लंबित मामलों की फेहरिस्त को कम किया जा सके। इस मौक पर मौजूद गृहमंत्री पी. चिदंबरम ने आतंकवाद, माओवादी हिंसा, मानवाधिकार और सामाजिक कुरीतियों पर गहरी चिंता जताई। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इशारों में ही सही देश की न्यायपालिका की सही तस्वीर पेश कर दी।

लेकिन आइए आंकड़ों के जरिए भी इस बात की पड़ताल कर लेते हैं कि आखिर अदालतों में वाकई इतने मामले लंबित पड़े हुए हैं। सबसे पहले बात करते हैं देश की सबसे बड़ी अदालत यानि सुप्रीम कोर्ट की। पिछले चार सालों के दौरान उच्चतम न्यायालय में लंबित मामलों की संख्या में 62 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। हालांकि सरकार और कानूनविदों के बीच इस बात पर चर्चा जारी है कि लंबित मामलों की बढ़ती संख्या को कैसे नियंत्रित किया जाए।

सुप्रीम कोर्ट की ओर से जारी आंकड़ों के अनुसार साल 2009 के आखिर तक सुप्रीम कोर्ट में लंबित कुल मामलों की संख्या 55,791 थी। जबकि वर्ष 2005 में सर्वोच्च न्यायालय में लंबित मामलों की कुल संख्या 24,481 थी। सुप्रीम कोर्ट में लंबित मामलों की बढ़ती संख्या चौंकाने वाली है क्योंकि निचली अदालतों में लंबित मामलों की संख्या में बढ़ोत्तरी की रफ्तार सुप्रीम कोर्ट के मुकाबले कम है। निचली अदालतों में लंबित मामलों में पिछले तीन साल के दौरान औसतन 7.35 प्रतिशत की दर से बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है। जबकि उच्च न्यायालय में इसी अवधि के दौरान लंबित मामलों की संख्या में 11.84 प्रतिशत वृद्धि हुई है। सात उच्च न्यायालयों दिल्ली, मुंबई, गुजरात, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, केरल और झारखंड में लंबित मामलों की संख्या में कमी दर्ज की गई है। सुप्रीम कोर्ट पहले संवैधानिक या जरूरी मामलों का ही निपटारा करती थी। लेकिन अब उसे कई दूसरे मामले भी निपटाने पड़ रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट 22 उच्च न्यायालयों के 600 न्यायाधीशों और विभिन्न ट्रिब्यूनल्स द्वारा दिए गए फैसले से जुड़ी तमाम छोटी-बड़ी कमियों को सुधारना चाहती है। इसकी वजह से लंबित मामलों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है।

अदालतों में लंबित मामलों के संबंध में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी आंकड़े -

साल	सुप्रीम कोर्ट में दायर मामलों की संख्या	सुप्रीम कोर्ट में निपटाए गए मामलों की संख्या	साल के अंत में लंबित मामले
2005			34,481
2006	61,839	54540	39,780
2007	69,103	61957	46926
2008	70,352	67469	49819
2009	77,151	71179	55791

2015 तक सुप्रीम कोर्ट में लंबित मामलों की अनुमानित संख्या-87,909 हजार

सुप्रीम कोर्ट में प्रतिवर्ष दायर मामलों की औसत संख्या-69,611 हजार  
सुप्रीम कोर्ट द्वारा हर वर्ष निपटारा किए जाने वाले मामलों की औसत संख्या-64,259 हजार

हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय) में लंबित मामलों की संख्या-4.49 लाख  
निचली अदालतों में लंबित मामलों की संख्या - 27.2 लाख

भारत के अटार्नी जनरल जी. ई. वाहनवती, जोकि अदालतों में लंबित मामलों को खत्म करने को लेकर सरकार की ओर से किए जा रहे प्रयासों में अहम भूमिका निभा रहे हैं, उनका कहना है कि बेहतर तकनीक से युक्त साफ्टवेयर और प्रबंधन कला में माहिर लोगों की मदद से इस समस्या पर काबू पाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन क्या वाकई इससे समस्या से निजात मिल जाएगी। श्री वाहनवती का कहना है कि इससे हमें ये पता चल जाएगा कि कैसे न्यायिक प्रक्रिया में हो रही देरी से बचा जा सकता है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनका मानना है कि सरकार इस मामले में समाधान की बजाए समस्या उत्पन्न करने में या बढ़ाने में अपनी भूमिका निभा रही है। क्योंकि अदालतों में दायर किए जाने वाले ज्यादातर मामलों में सरकार किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी रहती है। अदालतों में वादी की भूमिका में सरकार का स्थान पहले नंबर पर आता है। इसलिए किसी मामले के बारे में अपील दायर करने से पहले सरकार को पूरे प्रकरण के बारे में अच्छी तरह से पड़ताल कर लेनी चाहिए। वरिष्ठ अधिवक्ता राजीव धवन का मानना है कि अगर इस काम को गंभीरतापूर्वक अमल में लाया जाए तो लंबित मामलों की संख्या में व्यापक पैमाने पर कमी लाई जा सकती है। 12वें विधि आयोग और कई दूसरे विशेषज्ञ पैनलों की अनुशंसा के बाद इस मामले में सरकार की नींद खुली है। विधि मंत्री वीरप्पा मोइली ने 25 अक्टूबर 2009 को अगले तीन साल में लंबित मामलों को कैसे कम किया जाए इसे लेकर एक अवलोकन दस्तावेज पेश किया था। सरकार एक ग्यारह सदस्यीय नेशनल ऐरियर ग्रिड (नैग) का गठन कर रही है, जो लंबित मामलों की सही जानकारी देने के साथ ही मूलभूत सुविधाओं का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल सुनिश्चित करेगी। इससे लंबित मामलों की संख्या में कमी आएगी। नैग के सदस्य न्यायपालिका में खाली पड़े पदों पर नियुक्तियों



के बारे में कदम उठाएंगे। सुप्रीम कोर्ट में फिलहाल चार न्यायाधीश कम हैं। सुप्रीम कोर्ट में कुल जजों की संख्या 31 है। देश के विभिन्न उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) में 265 न्यायाधीशों के पद खाली हैं। विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के कुल पद 895 है। जबकि निचली अदालतों में न्यायाधीशों की कुल संख्या 16721 है, जिसमें से 2800 न्यायाधीशों के पद खाली पड़े हैं।

न्यायाधीशों के खाली पड़े पदों का भारत की अर्थव्यवस्था पर गंभीर असर पड़ रहा है। हाल ही में वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने कहा कि न्यायिक विवादों के निपटारे में हो रही देरी से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्रभावित हो रहा है। विदेशी निवेशक हमेशा निवेश से संबंधित कोई भी फैसला करने से पहले अदालतों में लंबित मामलों को लेकर होने वाले अतिरिक्त खर्च को भी ध्यान में रखते हैं।

1988 में विधि आयोग ने अपनी 127वीं रिपोर्ट में प्रति दस लाख आबादी पर 10.50 न्यायाधीशों के बजाए प्रति दस लाख की आबादी के लिए 50 न्यायाधीश के नियुक्ति की अनुशंसा की थी। साल 2000 तक यह अनुशंसा की गई थी कि प्रति दस लाख आबादी पर 107 न्यायाधीश होने चाहिए। लेकिन दो दशक बीत जाने के बावजूद हालात में कोई सुधार नहीं हुआ है। इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए आंध्रप्रदेश हाईकोर्ट के न्यायाधीश वी.वी. राव ने 6 मार्च को कहा था कि जितने मामले विभिन्न अदालतों में लंबित हैं उन्हें निपटाने में कम से कम 320 साल लग जाएंगे।

सुप्रीम कोर्ट ने भी कई बार मामलों की जल्द सुनवाई की वकालत की लेकिन इसमें आगे कोई कार्रवाई नहीं हुई। विधि मंत्री वीरप्पा मोइली के मुताबिक अदालतों से न्याय मिलने में हो रही देरी की वजह से लोगों का व्यवस्था से विश्वास डगमगाने लगा है। इन्हीं सब कारणों की वजह से आम लोग हिंसक गतिविधियों को हथियार के रूप में अपनाने को मजबूर हो रहे हैं। माओवादी हिंसा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के. जी. बालाकृष्णन का कहना है कि आबादी के अनुपात में न्यायाधीशों की संख्या पर्याप्त नहीं है। उनका कहना है कि जब तक अदालतों की संख्या नहीं बढ़ाई जाएगी, तब तक अदालतों में लंबित मामलों की समस्या से जल्दी मुक्ति नहीं मिल पाएगी। सरकार के पास वीजन डैक्यूमेंट (अवलोकन दस्तावेज) मौजूद है जिसमें उच्च

न्यायालयों में अतिरिक्त 700 न्यायाधीशों की नियुक्ति करने की अनुशंसा की गई है। इसके अलावा निचली अदालतों में भी 15,000 नए न्यायाधीशों के नियुक्ति की बात कही गई है। लेकिन न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर भी कुछ लोगों की अलग राय हैं। वरिष्ठ अधिवक्ता राजीव धवन के मुताबिक न्यायाधीशों की संख्या में बढ़ोत्तरी करने से पहले कुछ सावधानी बरतने की भी जरूरत है। अगर आपके पास बेहतर न्यायाधीश नहीं है तो आप आम लोगों को सही समय पर उचित न्याय मिलने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं। हमारे देश में संसाधन की भी समस्या है। योजना आयोग के अध्यक्ष मोंटेक सिंह आहलूवालिया के मुताबिक अदालतों में न्यायाधीशों की संख्या को बढ़ाने की खातिर राज्य सरकारों को कोष मुहैया कराना चाहिए। लेकिन न्यायाधीश और वकील इसके पक्ष में नहीं है। उनका कहना है कि केंद्र सरकार इसका खर्च वहन करे। इस तरह के संकेत मिल रहे हैं कि सरकार अब इस समस्या को लेकर गंभीरतापूर्वक विचार कर रही है। सरकार अब इस मामले में राष्ट्रीय मुकद्मा नीति पर काम कर रही है।

आइए एक उदाहरण के ज़रिए समझने की कोशिश करते हैं कि कैसे किसी मामले को अदालत की चौखट पर इंसान पाने के लिए बरसों बीत जाते हैं। नंदलाल उत्तराखंड का रहने वाला है और पेशे से दुकानदार है। जब वह 43 साल का था उसके खिलाफ 1983 में 375 ग्राम मिलावटी खाद्य तेल बेचने का मामला दर्ज किया गया था। 5 अप्रैल 2010 को जब सुप्रीम कोर्ट ने अंततः उसे दोषी करार दिया तो उसकी उम्र 70 साल की हो चुकी थी। हालांकि अदालत ने उसके बुढ़ापे और स्वास्थ्य कारणों के साथ ही लगभग तीन दशकों तक चले मुकदमें को देखते हुए उसकी सजा की अवधि कम कर दी, जोकि वह पहले ही जेल में गुजार चुका था। हरिद्वार जिले के रुड़की में उसकी दुकान है। एक खाद्य निरीक्षक ने उसकी दुकान से खाद्य तेल खरीदा और उसे केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला, कोलकाता में जांच के लिए भेज दिया। जांच रिपोर्ट के आधार पर इसे एक साल की सश्रम कारावास और दो हजार रुपये का जुर्माने की सजा सुनाई गई। बाद में वह जमानत पर वह बाहर आ गया। नंदलाल ने कई जगह पर अपील दायर की। उसका कहना था कि यह तेल आम लोगों के इस्तेमाल के लिए नहीं था। यह सिर्फ दीप जलाने के लिए बेचा जा रहा था।

## हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति पुलिस के लिए नई चुनौती

पुलिस, ये शब्द सुनते ही लोगों के दिमाग में जो पहली तस्वीर उभरती है उसका तात्पर्य एक ऐसे विभाग से होता है, जिसका मुख्य काम अपराधियों को पकड़ना, अपराध के लिए जिम्मेदार विभिन्न तत्वों की पहचान करना और आपराधिक मामलों की जांच पड़ताल करना होता है इसके अलावा पुलिस देश के भीतर कानून व्यवस्था बनाए रखने में भी अहम भूमिका निभाती है। लेकिन हाल के दिनों में सामाजिक स्तर पर बढ़ते तनाव और लोगों के भीतर पनपते असंतोष ने पुलिस के सामने एक नई चुनौती पेश की है। वह है सामाजिक स्तर पर वैध समस्याओं के समाधान हेतु आम लोगों में बढ़ती हिंसा की प्रवृत्ति। अब तक पुलिस सिर्फ गुनाहगारों को पकड़ने का काम करती थी। इस लिहाज से उसका काम मुश्किल तो होता था पर जटिल नहीं। लेकिन अब पुलिस को समाज के उस हिंसक रूप से मुकाबला करना पड़ रहा है जो आए दिन देश के किसी न किसी इलाके को हिंसा की चपेट में लेने के लिए सुरसा की तरह मुंह फैलाए खड़ी है। पहले सामाजिक आंदोलनों के जरिए देश को मजबूत करने का काम किया जाता था। लेकिन अब सामाजिक आंदोलन के नाम पर जाने-अनजाने राष्ट्रीय एकता और अखंडता को चोट पहुंचाने की कोशिश की जा रही है। ऐसे में इन तमाम गतिविधियों पर समय रहते रोक लगाने और इन्हें काबू में करने के लिए पुलिस को दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

कई बार सामाजिक हिंसा पर उतारू लोगों की समस्या जायज भी होती है। ऐसे में एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते भारत की पुलिस को दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ता है। पहला कानून व्यवस्था बनाए रखने की और दूसरा यह कि लोकतंत्र में हर किसी को अपनी बात रखने

की आजादी है। इसलिए आप किसी को धरना प्रदर्शन करने से रोक नहीं सकते। लेकिन कई बार हालात बेकाबू हो जाते हैं। ऐसे में एक जिम्मेदार मीडिया और पुलिस की भूमिका काफी कारगर साबित हो सकती है। भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान और म्यांमार में हिंसा की कई और वजहें भी हैं। मसलन धार्मिक कट्टरता, आतंकवाद और तानाशाही व्यवस्था। लेकिन भारत और श्रीलंका में बढ़ती हिंसक घटनाओं ने लोकतंत्र के साथ-साथ बदलते सामाजिक सरोकार एवं लोगों की बदलती मानसिकता की एक नई तस्वीर जमाने के सामने पेश की है यह एक ऐसी तस्वीर है, जिसे देखकर सीधे-सीधे किसी नतीजे पर नहीं पहुंचा जा सकता है। आतंकवादी हिंसा और आपराधिक हिंसा पर तो पूरी दुनिया में चिंता जताई जाती है। लेकिन समाज के अंदर पिछले कुछ वर्षों में हिंसक गतिविधियों में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। इस सामाजिक हिंसा पर कोई भी गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं देता है। छोटी-छोटी बातों पर लोगों की जान ले ली जाती है। ऐसी घटनाएं वाकई में चौंकाने वाली हैं। ये सवाल बड़ा ही अहम है कि सामाजिक हिंसा को जड़ से मिटाने के लिए पुलिस का इस्तेमाल किस हद किया जाए क्योंकि आज तकरीबन हर व्यक्ति चाहे वो गांव में रह रहा है या फिर महानगर में, किसी न किसी रूप से मीडिया से जुड़ा है। चाहे वो रेडियो का माध्यम हो, प्रिंट मीडिया हो या फिर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। हाल के दिनों में साइबर मीडिया भी लोगों के बीच अपनी मौजूदगी दर्ज करा रही है।

आखिर समाज का ये कौन सा रूप है, जो एकाएक जमाने के सामने हिंसक रूप लेकर खड़ा हो गया है। हाल की घटनाएं इस बात की गवाह हैं कि हिंसक घटनाओं में सिर्फ वयस्क ही शामिल नहीं होते हैं बल्कि अब छोटे-छोटे बच्चे भी हिंसक गतिविधियों में शामिल हो गए हैं। दिल्ली में एक छह साल के लड़के ने चार साल के लड़के की जान ले ली। गुडगांव में एक नामी स्कूल के छात्र ने अपने साथी की स्कूल परिसर में ही गोली मारकर हत्या कर दी। यानि अब समाज में हिंसा इस हद तक फैल चुकी है कि इसका बुरा असर बच्चों पर भी दिखाई देने लगा है। यही वजह है कि अब बच्चे भी हिंसक होते जा रहे हैं। कहा जाता है कि मारपीट और किसी की हत्या कर देना, इस काम को अशिक्षित और मानसिक रूप से बीमार लोग अंजाम देते हैं। लेकिन भारत का पढ़ा लिखा तबका या आधुनिक समाज इतना क्रूर क्यों होता जा रहा है। इससे पहले भी कई

ऐसे मौके आए हैं जहां पुलिस ने हालात को सुधारने में काफी अहम भूमिका निभाई है। मसलन गुजरात का दंगा हो या फिर मणिपुर में महिलाओं के साथ हुआ अत्याचार, पश्चिम बंगाल का नंदीग्राम हो या फिर सिंगूर का हिंसक आंदोलन। वैसे हिंसक गतिविधियों के मामलों में भारतीय समाज का अतीत ठीक नहीं रहा है भारतीय समाज में बुद्ध, महावीर और गांधी जैसे लोगों का होना ही यह साबित करता है कि यहां हिंसा का बोलबाला रहा है। भारतीय समाज ने हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता में संघर्ष के साथ-साथ सह अस्तित्व को भी विकसित किया है और इसे भी एक जीवन मूल्य के रूप में स्थापित किया है। लेकिन आजादी के बाद के वर्षों में सहअस्तित्व की भावना धीरे-धीरे हमारे समाज से खत्म होती जा रही है। आंतरिक हिंसा में बढ़ोत्तरी का यह एक मुख्य कारण है। इस सबके अलावा बाजार का उन्मादक होते जाना और उपभोक्तावाद का सांस्कृतिक स्तर पर आक्रामक होना भी इस बढ़ती हुई हिंसा की एक प्रमुख वजह है। आजादी के बाद हमने कोई नए मूल्य तो अर्जित नहीं किए, बल्कि जो मूल्य विकसित हो रहे थे, उन्हें भी हमने खो दिया है। अब लोगों के पास कोई मूल्य नहीं होता है, बस एक लक्ष्य होता है और उसे पाने के लिए कोई कुछ भी करने को तैयार रहता है। इस कुछ भी में हिंसा भी शामिल है। भारत में लोकतंत्र की जड़ें इतनी मजबूत होने के बावजूद अगर हिंसक आंदोलन इतनी तेजी से फैल रहे हैं, तो हिंसा के इस नए ट्रेंड की गहराई से जांच पड़ताल होनी चाहिए। वैसे तो आधुनिक समाज में बढ़ती हुई हिंसा के लिए किसी एक वजह को जिम्मेदार नहीं माना जा सकता है। ऐसे में जो वजह सामने आती है, वह है लोकतंत्र में समस्याओं का सही समय पर शांतिपूर्ण हल नहीं निकल पाना। देश में गरीबों की तादाद सबसे अधिक है। लेकिन गरीब तबका और प्रशासनिक तंत्र के बीच अलगाव की स्थिति। भ्रष्टाचार की समस्या। अदालतों से मिलने वाले इंसाफ में देरी। इसके अलावा दूसरी जटिलताओं की वजह से कमजोर तबकों की आवाज़ पर ध्यान नहीं दिया जाता है। हिंसक आंदोलन और संघर्षों के बढ़ने की दूसरी वजह है लोगों में जोर पकड़ती यह धारणा कि किसी धमाकेदार घटना से ही उनकी समस्याओं पर सरकार का ध्यान जाएगा। वैसे भी जब सहज तरीकों से लोगों को समस्याओं का समाधान नहीं मिलता है तो वे उग्र तरीकों को अपनाने के बारे में सोचने लगते हैं। ये जरूरी नहीं है कि ये लोग हिंसा को स्थायी

तरीका मानते हों, लेकिन उन्हें लगता है कि एक दो बार हंगामा फायदेकारक हो सकता है। लेकिन इसके बाद हालात इतने उलझ जाते हैं कि हिंसा का सिलसिला शुरू हो जाता है। हिंसा के इस नए ट्रेंड का तीसरा कारण है राजनीतिक भटकाव। जाति, क्षेत्र और धर्म के नाम पर स्वार्थी तत्व सियासी फायदे की खातिर लोगों को इस कदर भड़काते हैं कि हालात बेकाबू हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी फैसला लेना जोखिम भरा होता है। ऐसे में खुद लोकतंत्र ही लोकतंत्र की राह में रोड़ा बन जाता है। अमरनाथ श्राइन बोर्ड को ज़मीन दिए जाने को लेकर छिड़ा विवाद इसका उदाहरण है। अगर मामला ज्यादा उलझा हुआ है तो वैसी स्थिति में हालात को काबू करना काफी मुश्किल भरा काम होता है। हद तो तब हो जाती है जब कोई मांग मानने लायक हो ही नहीं। ऐसे में आंदोलन हिंसक रूख अख्तियार किए बिना नहीं रहता। राजस्थान में आरक्षण की मांग को लेकर उठा विवाद इसकी मिसाल है। इस तरीके के आंदोलन के पीछे ये मानसिकता काम करती है कि लोकतंत्र में कुछ भी कराया जा सकता है अगर आपके पास जनाधार है। ये बड़ी ही अजीबोगरीब स्थिति होती है जब लोकतंत्र की ताकत को कानून से बड़ा समझ लिया जाता है। बढ़ती हिंसक घटनाओं के पीछे आर्थिक स्वार्थ भी एक बड़ी वजह है। तमाम दूसरी चीजों की तरह हिंसा का भी अपना अर्थशास्त्र होता है। यही नहीं हिंसा के पीछे भी बाजार का बड़ा हाथ होता है। इस बारे में आम लोगों को न तो ज्यादा कुछ पता होता है और न ही लोग इसके बारे में गहराई से कभी सोचते हैं। इस बाजार में जैसे व्यापारी शिरकत करते हैं जो चोरी छिपे विदेशों से हथियार और गोला बारूद की अवैध तस्करी करते हैं। नशे के सौदागर भी हिंसक संघर्षों को हवा देते हैं। छोटी बातों पर गली मुहल्लों में होने वाली हिंसा भी अब एक ग्लोबल गेम की शक्ति अख्तियार कर चुकी है। ऐसे तमाम गेम को विदेश में बैठा सरगना अपने गुर्गों के जरिए संचालित करता है। यही वजह है कि अब आंदोलन के दौरान अक्सर लोगों के हाथ में हथियार देखने को मिल जाते हैं। हथियारों का ये चलन भी हिंसा को बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभा रहा है। कई मामलों में यही हथियार जबरन वसूली का जरिया बन जाते हैं। देश के अलग-अलग हिस्सों में ऐसा हो भी रहा है। इसके अलावा दुश्मन देश की खुफिया एजेंसियां हिंसक आंदोलनों के लिए पैसा मुहैया कराती हैं और आंदोलन को हिंसक स्वरूप प्रदान करने के

लिए एड़ी चोटी का जोर लगा देती हैं। यह भी एक महत्वपूर्ण वजह है कि आंदोलन चाहे किसी भी मुद्दे को लेकर हो छिटपुट हिंसा जरूर देखने को मिलती है। यही वो मुख्य बातें हैं जिसने पुलिस के माथे पर चिंता की लकीरें खींच दी हैं। क्योंकि अब उसे आम लोगों की समस्याओं के साथ कई ऐसी समस्याओं से भी जूझना पड़ता है जिसकी वजह से पुलिस कभी भी मुसीबत में घिर सकती है। मसलन अब ज्यादातर आंदोलन के दौरान हथियार के इस्तेमाल की घटना आम हो गई है। पुलिस किस तरीके से चौतरफा चुनौतियों का सामना करते हुए अपने मकसद में जुटी हुई है। इसे समझने के लिए रोहतक की एक घटना पर नजर डाल लेते हैं। यहां के करौथा गांव में एक डेरे में मौजूद तकरीबन चार हजार लोगों को इलाके गांव वालों चारों तरफ से घेराबंदी करके बैठे हुए थे। इस दौरान हुए संघर्ष में एक व्यक्ति की मौत भी हो चुकी थी। स्थिति काफी तनावपूर्ण मालूम पड़ रही थी। गुस्साए गांववालों ने डेरे की तरफ जाने वाली सड़क पर अवरोध खड़ा कर दिया था। इलाके की पुलिस को जब इस घटना की जानकारी मिली तो पूरे इलाके में फैले तनाव का जायजा लिया गया। फिर तुरंत ये तय किया गया कि तनिक भी देरी करने का मतलब है कि गांव में हालात बेकाबू हो सकते थे। लेकिन गांव वालों के गुस्से को देखते हुए पुलिस ने संयम से काम लेने का मन बनाया। रातों-रात पुलिस के जवान सड़क पर पड़ी बाधा को हटाते हुए डेरा के अंदर दाखिल हुए और वहां मौजूद हजारों लोगों को अपने साथ लाए खाली बसों में बैठाया और पुलिस की सुरक्षा घेरे में तमाम लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया। लेकिन इस पूरे ऑपरेशन के दौरान पुलिस को इलाके के लोगों के गुस्से का भी सामना करना पड़ा। हालांकि इस मामले में पुलिस की कोई गलती नहीं थी। लेकिन फिर भी इलाके की पुलिस ने सिर्फ लोगों को समझा बुझाकर एक बड़े हादसे को टाल दिया। मोटे तौर पर कहां तो पुलिस की भूमिका ज्यादातर मामलों में सहयोगी होती है। लेकिन आजादी से पहले और आजादी के ठीक बाद पुलिस को लेकर आम लोगों के मन में जो तस्वीर उभरी उसमें अभी भी ज्यादा फर्क नहीं आया है। लोग पुलिस को शक की नजरिए से देखते हैं। लोग पुलिस थाने के अंदर जाने में हिचकिचाते हैं। उन्हें लगता है कि थाने में तो सिर्फ अपराधी जाते हैं। आम आदमी अपनी समस्या लेकर थाने क्यों जाए। पुलिस थाना तो सिर्फ अपराधियों के लिए बना है। लेकिन हकीकत इसके

ठीक विपरीत है। पुलिस का पहला काम है आम लोगों की सुरक्षा को सुनिश्चित करना। अगर आम लोग ही पुलिस को शक के नजरिए से देखेंगे, तो जाहिर है कि पुलिस को अपना काम पूरा करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। यही बात आज पुलिस बल के लिए सबसे बड़ी चुनौती साबित हो रही है। ज्यादातर मामलों में यही देखने को मिलता है कि पुलिस कितना भी अच्छा काम कर ले, लेकिन वह आम लोगों का यकीन और भरोसा नहीं जीत पाती है। आम लोगों को लगता है कि किसी भी मामले में पुलिस के साथ सहयोग का मतलब है थाने और कोर्ट कचहरी का चक्कर लगाना पड़ेगा। या किसी तरह के झमेले में पड़ना वगैरह-वगैरह। लेकिन आम लोगों की यही सोच इलाके में अपराध और अपराधियों के हौसले को बढ़ावा देती है। इसलिए पुलिस को सबसे पहले इलाके के आम लोगों के बीच अपनी पहचान एक पुलिस वाले के तौर पर नहीं एक सहयोगी के तौर पर बनानी पड़ेगी। जिसकी बदौलत वह आम लोगों का भरोसा जीत सके और इलाके के लोग पुलिस पर भरोसा कर सकें। साथ ही लोगों के मन में पुलिस को लेकर बैठे डर को भी हटाना बहुत जरूरी है।



## हिंसा के प्रति सामाजिक उदासीनता

परिवर्तन संसार का नियम है। लेकिन भारत में सामाजिक स्तर पर जो बदलाव नज़र आ रहे हैं। उसे देखते हुए परिवर्तन का यह नियम भारत के संदर्भ में आत्मघाती साबित हो रहा है। समाज में वक्त के साथ हो रहे बदलाव की बात करें तो कई मामलों में हमारा समाज कुछ ऐसी आदतों और प्रवृत्तियों को आत्मसात कर चुका है, जिसके परिणाम आम लोगों के साथ-साथ सरकार के लिए भी मुसीबत बनते जा रहे हैं। ऐसी ही एक मुसीबत का नाम है हिंसा के प्रति सामाजिक स्तर पर आम लोगों की बेरुखी। सिद्धांत रूप में इस बात से आम लोगों का सरोकार नहीं के बराबर जान पड़ता है। लेकिन व्यावहारिक तौर पर समाज का हर तबका इस बात को महसूस करता है कि भारतीय समाज में हिंसा के प्रति उदासीनता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। लोगों का सामाजिक सरोकार से नाता टूटता जा रहा है। सड़क दुर्घटना और उसके बाद दो पक्षों के बीच हुई हिंसक झड़प का शिकार व्यक्ति सड़क पर तड़प-तड़प कर अपनी जान दे देता है। लेकिन राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के आईटीओ पुल से गुजरने वाले हजारों यात्रियों को इस बात की कोई परवाह नहीं है। क्या भारतीय समाज इतना असंवेदनशील हो गया है कि वह इलाज के लिए तड़पते एक इंसान को अस्पताल पहुंचा कर मानवता के लाज की रक्षा कर सके। भारत को युवाओं का देश और व्यावसायिक स्तर की तो बात ही छोड़ दीजिए क्योंकि वहां तो लोगों में एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ लगी रहती है। दिल्ली के जंतर-मंतर पर अपनी आवाज़ बुलंद करते भोपाल गैस कांड के पीड़ित हों या फिर नर्मदा बचाओ आंदोलन के धरना देते लोग, इनके समर्थन में कई लोग आगे आए। मीडिया कवरेज के बाद मध्यवर्ग की बढ़ती मांग के कारण मॉडल जेसिका लाल की हत्या की फिर से जांच के आदेश हों या फिर दिल्ली के गली कूचों में मकान मालिक और दुकानदारों की बुलंद आवाज़, मन में एक सवाल उठ रहा है कि क्या

वाकई मध्य वर्ग अपने घरों से निकल अपनी आवाज़ बुलंद करने सड़कों पर आ रहा है? क्या वाकई वह सामाजिक समस्याओं में अपनी रूचि दिखा रहा है?

समाज शास्त्री डा. धर्मेन्द्र सिंह कहते हैं कि आज भी जितना उन्हें सामाजिक समस्याओं को लेकर सड़कों पर निकलना चाहिए जैसा कि स्वतंत्रता संग्राम या 60-70 के दशक में होता था वैसा नहीं हो रहा है।

इसी मुद्दे पर वरिष्ठ पत्रकार और अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र हिंदुस्तान टाइम्स में लीगल एडीटर श्री सत्य प्रकाश का कहना है कि आज जो वह देख रहे हैं वो बहुत कम है। मध्यम वर्ग को और ज्यादा तादाद में सड़कों पर उतरना चाहिए। हमारे देश में जो हो रहा है कानून के खिलाफ जो लोग काम करते रहते हैं और कई दूसरी गैरकानूनी गतिविधियों में संलिप्त हो जाते हैं। वैसे लोगों के खिलाफ जब तक कोई बड़ी हस्ती सामने नहीं आ जाती, आम लोगों का ध्यान उस तरफ कम ही जाता है। पवन वर्मा जिन्होंने मध्यवर्ग पर एक किताब लिखी है “द ग्रेट इंडियन मिडिल क्लास”, कहते हैं कि भारत में मध्यवर्ग तभी हिलता है जब उसे चोट उसे पहुंचती है। पवन कहते हैं “जब कोई घटना या मुद्दा उनकी दुनिया से जुड़ा हुआ उठता है तो उसकी प्रतिक्रिया होती है, वे उद्वेलित होते हैं, हाल ही में दिल्ली में करीब एक हजार झुग्गियां जल गईं, ऐसी घटनाओं पर मध्यवर्ग को अफसोस जरूर होता होगा पर उसे वह उसी तरह से अपनी प्रतिक्रिया में रेखांकित नहीं करते।”

पिछले दिनों फ्रांस में हो रहे विरोध प्रदर्शनों के बारे में आपने सुना होगा, वहां जनता का विरोध इस कदर बढ़ा कि सरकार को विवादास्पद नागरिक कानून को बदलने पर मजबूर होना पड़ा। हाल में मध्यवर्ग में बेहद लोकप्रिय रही और उसे एक तरह से प्रतिबिंबित करती हुई फिल्म बड़े पर्दे पर दिखी थी, रंग दे बसंती, फिल्म के युवा नायक तब जागते हैं जब उनका एक मित्र मिग विमान दुर्घटना में मारा जाता है।

हाल में रुपहले पर्दे से दूर मॉडल जेसिका लाल के हत्यारों का बच निकलना लोगों को इतना उद्वेलित किया कि वे इंडिया गेट पहुंच गए मोमबत्ती जलाकर विरोध करने, कुछ कुछ रंग दे बसंती की ही तरह। तो सवाल ये उठता है कि क्या किसी मशहूर हस्ती का विरोधों से जुड़ना जैसे अरूंधती रॉय और मेधा पाटकर, मध्यवर्ग को अपने घरों से बाहर खींचता है? पवन वर्मा कहते हैं कि हिंदुस्तान में चाहे वह मध्यवर्ग हो या उससे

नीचे के वर्ग हो या फिर ऊंचा वर्ग नामचीन लोगों की तरफ झुकाव एक अहम चीज़ है। जब मध्यवर्ग में दहशत होती है, जैसे डकैती या खूनखराबा जो उसकी दुनिया से जुड़े हों तो उसकी कड़ी प्रतिक्रिया होती है। एक चीज़ अच्छी जरूर है कि चाहे उसी की दुनिया के सीमित चीज़ों से उसमें इस तरह की प्रतिक्रिया तो हो रही है, ये मानना कि मध्यवर्ग अब एक संवेदनशील वर्ग बन चुका है और वह हर मुद्दे या गलत कार्य को लेकर आवाज़ उठाएगा वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा नहीं जान पड़ता है।

20 करोड़ से बड़ा ये मध्यम वर्ग भारत में इतनी बड़ी शक्ति बनकर कभी नहीं उभरा। न ही कभी एक आवाज़ में बोला क्योंकि मध्यम वर्ग का चरित्र एक समान नहीं है। यही नहीं इनके सोच में बड़ा फर्क है। भारतीय जनसंचार संस्थान में प्रोफेसर आनंद प्रधान हिंसा के प्रति सामाजिक उदासीनता के मुद्दे पर कहते हैं कि मध्यम वर्ग के पास समाज में घट रही तमाम चीज़ों को गहराई से सोचने समझने के लिए वक्त ही कहां है। मध्यम वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो पूरी जिंदगी खाने कमाने में ही गुजार देता है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि ये अन्याय के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाते। लेकिन इनकी जीवन शैली कुछ इस तरीके की होती है कि अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक कामों में ही ज्यादा उलझे हुए रहते हैं। एक अनुमान के मुताबिक एक मध्यवर्ग समाज तभी होगा जब 70 से 80 प्रतिशत बहुमत हो, हमारे मध्यवर्ग में 5 से 10 प्रतिशत लोग ही ऐसे हैं, जिनमें एक तरह की समानता दिखाई देती है। उसके बाद अगर बारीकी से गौर करे तो मध्यम वर्ग में भी कई और वर्ग और उनमें कई स्तरों पर अंतर महसूस होने लगता है। यही नहीं उसमें से सब अपने आप को बुद्धिजीवी समझते हैं।

मध्यवर्ग में अब विचारधारा के प्रति लगाव नहीं है पर वैश्वीकरण के युग में उसे पता है कि अगर वे आवाज़ नहीं बुलंद करेंगे तो उसकी सुनवाई नहीं होगी। मध्यमवर्ग ने धरना प्रदर्शन हड़ताल देखा है,वादों का टूटना देखा है लेकिन वह अपनी बात अपने हिसाब से उठाना चाहता है।

अब संचार के इस युग में मोबाइल फोन पर संदेश हो, इंटरनेट के जरिए संदेशों की आवाजाही से देश-विदेश तक संपर्क साध लेते हैं, जब सत्येंद्र दुबे या मंजूनाथ जैसे लोग भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं और मारे जाते हैं तो दुनिया भर से आवाज़ उठती है। लेकिन ये मामले

महज अपवाद से ज्यादा और कुछ नहीं है क्योंकि हिंदुस्तान जैसे बड़े देश में हर दिन न जाने कितने सतेंद्र दूबे और मंजूनाथ जैसे लोग अपनी वैध समस्याओं की खातिर हिंसा का शिकार होते हैं लेकिन उनके बारे में किसी को पता तक नहीं चलता है।

राष्ट्रीय रोजगार कानून आए और मशहूर हस्तियों ने धरना प्रदर्शन भी दिया। लेकिन पास इसलिए हुआ कि गांव का एक गरीब नौजवान बिल्कुल तैयार नहीं था कि उसे बेरोजगार करके कहीं भेज दीजिए। इसलिए उन नौजवानों ने यह तय कर लिया कि जो हमारा काम नहीं करेगा उसे भगाएंगे। लेकिन ऐसी ताकत का इजहार हिंदुस्तानी समाज सभी मुद्दों को लेकर एक तरीके से नहीं करता है। रोजगार का ताल्लुक चूंकि युवा वर्ग से है इसलिए वो अपनी बात मनवाने के लिए मुखर होने में जरा भी देर नहीं लगाता। लेकिन बात जब समाजिक मुद्दों की आती है तो वही युवा वर्ग उतना सक्रिय दिखाई नहीं देता। अगर समाज या यूं कहें कि मध्यम वर्ग, क्योंकि सामाजिक मुद्दों का सबसे बड़ा असर इसी वर्ग पर पड़ता है। अपने अधिकारों की खातिर लोकतांत्रिक तरीके से आवाज़ उठाना शुरू कर दे, तो देर से ही सही लेकिन एक सही प्रक्रिया के तहत आम लोगों की आवाज को सरकार तक पहुंचाया जा सकता है। यानि मध्यवर्ग को वोट की ताकत के बाद अपनी बुलंद आवाज और आर्थिक शक्ति की ताकत का भी अंदाजा होना चाहिए और आने वाले दिनों में उसकी आवाज और सशक्त होगी अगर वह शिक्षित और लोकतांत्रिक तरीकों को सही मायने में अपना ले।

### **बढ़ती आबादी और घटते संसाधन**

मध्य प्रदेश के पिपरिया तहसील में आदिवासियों ने अपने अधिकारों की मांग को लेकर खास तरह से विरोध दर्ज किया। करीब पांच हजार की तादाद में पिपरिया पहुंचे आदिवासियों ने जंगल पर उनके अधिकार छीने जाने के विरोध में जंगली उपजों की बिक्री की। यह विरोध प्रदर्शन देश के पांच राज्यों मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, उड़ीसा और महाराष्ट्र में काम कर रहे आदिवासी संगठनों ने आयोजित किया। पुरखों से नाता जोड़ेंगे, जंगल नहीं छोड़ेंगे के नारे लगाते हुए पिछले 16 दिनों की यात्रा के बाद यह आदिवासी समूह पिपरिया पहुंचा। आदिवासियों की यह यात्रा करीब 15 दिनों पहले खंडवा जिले के कालीघोड़ी नामक स्थान से शुरू की

गई थी जहां कभी गोंड राजाओं का शासन था। पचमढ़ी के समीप बसा पिपरिया वह इलाका है जहां 19वीं शताब्दी में गोंड राजा भूभू सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह छेड़ा था, जिसके कारण बाद में उन्हें फांसी दे दी गई थी। सन् 1867 में घोषित भारत का पहला संरक्षित जंगल, बोरी भी इसी क्षेत्र में है।

## सवाल

विरोध के तौर पर महौल नाम के एक जंगली पेड़ के पत्ते बेच रहे जगत सिंह बताते हैं, “जंगली उपज से हमारा अधिकार छीनने के बाद अब सरकार हमारी बची-खुची थोड़ी सी जमीन भी बाघ अभयारण्य के नाम पर छीन लेना चाहती है, ऐसे में हम लोग क्या करेंगे।” दरअसल दिनों-दिन बढ़ती आबादी और संसाधनों की कमी की वजह से सरकार ने जंगल और जंगलों में रहने वाले आदिवासी जनता के हितों में सेंध लगानी शुरू कर दी है। सरकारी नीति से नाराज राधाबाई भी अपनी गुहार सुनाती हैं, राधा कहती हैं, “हम एक गांव से दूसरे गांव अपने रिश्तेदारों से मिलने भी नहीं जा सकते क्योंकि अधिकारी इसे जंगली क्षेत्र में घुसपैठ मानते हैं, हम अपने जानवरों को भी वहां नहीं चरा सकते हैं।”

मध्य प्रदेश के होशंगाबाद, बैतूल और छिंदवाड़ा जिले में ही आदिवासियों के करीब 500 गांव ऐसे हैं जो कि संरक्षित जंगलों में पड़ते हैं। राज्यों में दर्जनों ऐसे संरक्षित जंगल हैं जहां आदिवासियों को ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

महाराष्ट्र और गुजरात में बड़ी परियोजनाओं के कारण विस्थापित किए गए लोगों और आदिवासियों के मध्य काम कर रही प्रतिभा शिंदे का कहना है कि आर्थिक उदारता और वैश्वीकरण के दौर में पहले के ग्रामीण स्तर के यह झगड़े अब सिर्फ गांव के नहीं रह गए इसीलिए इन्हें व्यापक प्रारूप देने की जरूरत है। सरकार ने अपनी जरूरतों के मुताबिक बड़ी बड़ी परियोजना तो इन इलाकों में शुरू कर दी। लेकिन इसके बदले न तो आदिवासियों के पुनर्वास की दिशा में सही तरीके से काम किया और न ही इसके बदले उन्हें सम्मानजनक मुआवजा ही दिया गया।

## अभियान

आंदोलन कर रहे आदिवासियों का कहना है कि जब आदिवासी

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 62

अपनी जमीन के बदले कम मुआवजा दिए जाने के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं तो सरकार आदिवासियों के खिलाफ दमनकारी नीति अपना लेती है। जैसा कि उड़ीसा के लिंगनगर में हुआ था। होशंगाबाद में भी बाघों को संरक्षण देने, सेना की शूटिंग रेंज बनाने और तवा बांध के नाम पर आदिवासी गांवों को बार-बार उजाड़ा जाता रहा है।

मध्य प्रदेश में विकसित किए जा रहे सतपुड़ा बाघ अभयारण्य से करीब-करीब हजारों की संख्या में लोग विस्थापित हुए हैं। लेकिन सरकार की भी अपनी समस्या है बढ़ती मांग ने सरकार को उन तमाम संसाधनों के इस्तेमाल के लिए विवश कर दिया है जिसकी तरफ पहले लोग ये कहकर जाने से मुकर जाया करते थे कि अरे भाई वो तो जंगली इलाका है वहां कुछ नहीं हो सकता है।

शनिवार 15 जुलाई, 2006 प्रधानमंत्री ने 'कपास बेल्ट' कहे जाने वाले महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के बदहाल किसानों के लिए 37 अरब 50 करोड़ रूपए के पैकेज की घोषणा की। लेकिन सरकारी कोशिश के बावजूद किसानों की हालत में कोई खास तब्दीली नहीं आई है। राज्य सरकार के मुताबिक उसने एक वर्ष के दौरान लगभग 11 अरब रूपए कर्जदार किसानों के बीच वितरित किए हैं। विस्थापित होने वाले लोगों के राहत और पुनर्वास के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने चेतावनी दी है कि यदि पर्याप्त कदम नहीं उठाए जाते तो आगे होने वाला निर्माण के काम पर रोक लगा दी जाएगी। लेकिन हकीकत क्या है ये सबको पता है। विस्थापित लोगों के लिए काम कर रही संस्था नर्मदा बचाओ आंदोलन ने याचिका दायर कर मांग की थी कि बांध की ऊंचाई 110 मीटर से बढ़ाकर 122 मीटर न की जाए।

नर्मदा बचाओ आंदोलन के कार्यकर्ता इस मुद्दे पर भूख हड़ताल कर रहे थे। इस परियोजना से जहां गुजरात के कच्छ और सौराष्ट्र क्षेत्रों को पानी मिलना है वहीं महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्यप्रदेश राज्यों को भी इस परियोजना से फायदा होगा। लेकिन इससे बड़ी तादाद में लोगों के बेघर होने का भी खतरा मंडरा रहा है। भारतीय समाज में संसाधन की कमी और उससे उत्पन्न हो रही समस्याओं का सबसे ज्यादा असर निचले तबके पर पड़ रहा है। उनके पास न तो रहने को घर है। बच्चों की पढ़ाई के लिए गांवों में स्कूल की सुविधा नहीं के बराबर है। स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए सुदूर गांवों में रहने वाली जनता आज भी तरस रही है। पीने के

साफ पानी के लिए राजस्थान के मरुस्थली इलाकों की जनता से लेकर उत्तर-पूर्वी राज्यों में पहाड़ों पर रहने वाले आदिवासियों तक को दो-तीन किलोमीटर तक दूरी तय करनी पड़ती है। यही नहीं गांवों में सड़क और परिवहन की सुविधा नहीं होने की वजह से इन इलाकों में रहने वाले लोगों को कई अन्य तरह की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। ये हालात तब है जब हमारे देश में लगातार संसाधनों की कमी का रोना रोया जा रहा है। लेकिन उसके ठीक विपरीत देश की आबादी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हो रही है। अब हमारी आबादी करोड़ों में नहीं बल्कि अरबों में पहुंच चुकी है। देश में एक बार फिर जनगणना के काम की औपचारिक शुरुआत की जा चुकी है। इसके नतीजे भी जल्द सामने आ जाएंगे। जिससे यह पता चल जाएगा कि देश की वास्तविक आबादी कितनी है। लेकिन बेतहाशा बढ़ती आबादी के लिए कौन जिम्मेदार है। ग्रामीण इलाकों में शिक्षा की कमी होने की वजह से आम लोग इस समस्या के बारे में ज्यादा गहराई से नहीं सोच पाते हैं। यही वजह है कि हाल के दिनों में जनसंख्या के लिहाज से गांवों की आबादी में ज्यादा बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि महानगरों में अब पहले की तुलना में कहीं ज्यादा की संख्या में आम लोग अब रोजगार की तलाश में आने लगे हैं। इससे ये बात भी साफ हो जाती है कि गांव में रोजगार और संसाधन दोनों की कमी है। गांवों में बढ़ती गरीबी ने लोगों को शहरों की ओर पलायन करने को मजबूर कर दिया है। आजादी के साठ से अधिक वर्ष बीत जाने के बावजूद ग्रामीण इलाकों में विकास की रफ्तार अभी काफी धीमी है। यही वजह है कि इन इलाकों में समस्याओं की फेहरिस्त काफी लंबी हो गई है। दूसरे शब्दों में कहें तो गांव में रहने का मतलब है समस्याओं के बीच जिंदगी गुजर बसर करना। यही वजह है कि देश के कई राज्यों के ग्रामीण इलाकों में नक्सलवाद की समस्या दिनों दिन गहराती जा रही है। इसके अलावा दूसरे तरह के आपराधिक गतिविधियों में भी इन इलाकों के लोग लिप्त पाए गए हैं।

## हिंसा का सामाजिक विन्यास

स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2009 की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने आतंकवाद और हिंसा पर चिंता प्रकट की। राष्ट्रपति के रूप में स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर अपने संबोधन में उन्होंने कहा, “कोई भी समस्या हो, कोई भी मुद्दा हो, कोई भी कारण हो लेकिन भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में हिंसा के लिए कोई जगह नहीं है, ऐसा कोई मुद्दा नहीं है जिसे बातचीत के जरिए न सुलझाया जा सके, मैं देश के सभी हिस्सों में शांति बनाए रखने की अपील करती हूँ।”

उन्होंने कहा कि भारत में विकास हो रहा है लेकिन यह जरूरी है कि उसका लाभ हर गांव, कस्बे और जिले तक पहुंचना चाहिए, राष्ट्रपति ने कहा, हम जब भी कोई काम करें गरीब आदमी का चेहरा ध्यान में रखना चाहिए और सोचना चाहिए कि इसका लाभ उस तक पहुंचेगा या नहीं। उन्होंने अपने भाषण में सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिए सशक्त प्रयास करने पर जोर दिया और कहा कि बाल मजदूरी, कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज और महिलाओं के साथ भेदभाव को मिटाए बिना राष्ट्र का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। धरती के नीचे वृक्ष की जड़ें शाखाओं तक पोषण पहुंचाने के लिए कभी पुरस्कार नहीं मांगती हैं। महामहिम की बात वाकई में प्रेरणादायक है। भारत एक युवा देश है जहां 54 करोड़ नौजवान बसते हैं। युवाओं में उच्च नैतिक मूल्यों का होना आवश्यक है ताकि राष्ट्रनिर्माण में उच्च आदर्श शामिल हों। लेकिन हमारा समाज अभी भी संकीर्णताओं में उलझा हुआ है। देश के अलग-अलग हिस्सों में अभी भी धर्म के नाम पर जाति और क्षेत्रवाद के नाम हिंसक वारदातें होती रहती हैं। इसी की एक कड़ी उड़ीसा के कंधमाल में भी देखने को मिली। वहां धर्म के आधार पर हिंसा और प्रतिहिंसा की घटना ने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा।



जामिया मिलिया इस्लामिया के समाजशास्त्र और मीडिया के प्रोफेसर विश्वजीत दास कहते हैं, “आदिवासियों में धर्म परिवर्तन बहुत पहले से चला आ रहा है यह कोई नई बात नहीं है। आदिवासियों को हिंदू धर्म में शामिल करने का मामला पुराना है, साथ ही कंध और पाणा के बीच पारंपरिक रूप से संघर्ष का रिश्ता रहा है।”

लेकिन इन सबसे अलग सामाजिक स्तर पर उड़ीसा में एक दिल दहला देने वाला मामला सामने आया। शनिवार, 24 सितंबर, 2005 को। उड़ीसा की पुलिस ने 29 लोगों की तलाश में एक अभियान छेड़ा था जिन पर आरोप है कि उन्होंने कुछ महिलाओं को जबर्दस्ती नंगा करके घुमाया था। यह घटना उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर से 70 किलोमीटर दूर स्थित भुवनपति गांव में हुई। आरोप है कि गांव में उच्च जाति के लोगों ने छह पिछड़ी जाति की महिलाओं को बाल पकड़कर घसीटा और उन्हें नंगा करके घुमाया। बताया गया है कि ये महिलाएं नाई जाति से हैं और उनका कसूर इतना भर था कि गांव की एक शादी में उनके पतियों ने अतिथियों के पांव धोने से इनकार कर दिया था। सामाजिक हिंसा का इससे वीभत्स उदाहरण शायद ही कहीं देखने को मिलेगा।

इस घटना की शिकार महिला तिलोत्तमा बारिक के मुताबिक उसे घर से घसीटकर निकाला गया। मेरे साथ मारपीट की गई और नंगा कर घुमाया गया। इस घटना के बाद गांव की दलित महिलाएं और बच्चे डर के कारण घर छोड़कर भाग गए।

ब्रह्मगिरी पुलिस स्टेशन के प्रभारी दिलीप कुमार त्रिपाठी का कहना था कि इस मामले में जिन 29 लोगों के खिलाफ शिकायत की गई है उन्हें जल्द ही सलाखों के पीछे पहुंचा दिया जाएगा। इस इलाके में पिछड़ी जाति के लोगों के उच्च जाति के लोगों के पैर धोने से मना करने के बाद से कुछ समय से तनाव चल रहा था, पहले भी पिछड़े समुदाय के लोगों पर कई हमले हो चुके हैं। यहां तक कि उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया था और उन्हें पानी लेने पर भी पाबंदी लगा दी गई थी।

दिल्ली से कोई 55 किलोमीटर दूर हरियाणा के बढराम गांव में एक दलित युवक के एक मंदिर में लगे नीम के पेड़ से दातुन तोड़ने का परिणाम न सिर्फ़ ये हुआ कि उस युवक को पीटा गया, बल्कि गांव

के दलितों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। ये घटना शनिवार, 20 अगस्त 2005 को घटी। दलितों का आरोप है कि उन्हें दुकानों से सामान बेचने वालों पर पंचायत ने 551 रूपए का जुर्माने का फरमान सुनाया।

लेकिन गांव के लोगों ने इस बात को स्वीकार किया कि दातुन तोड़ने पर दलित युवक की पुजारी ने पिटाई की और उसके सिर में चोट आई थी। इसके साथ कुछ और दलितों की पिटाई की बात भी वे मानते हैं, पर लोग दलितों से इसलिए नाराज हैं कि उन्होंने पंचायत की बात नहीं मानी।

भारत के पश्चिमी राज्य राजस्थान के एक गांव के तालाब में दलित लोगों को नहाने से रोकने के मामले में पुलिस ने एक साल बाद कार्रवाई की और 17 लोगों को गिरफ्तार किया। मामला राजधानी जयपुर से 60 किलोमीटर दूर स्थित फागी कस्बे के चकवारा गांव का है। देश में धर्म और जाति की राजनीति का बोलबाला है, उसमें अपराधी भी घुस जाते हैं। दरअसल जाति का आधार है जन्म और जन्म की नींव विवाह से है इसलिए जब तक अंतरजातीय विवाह नहीं होंगे तब तक जाति व्यवस्था और निहित घृणा जानेवाली नहीं है। मेरा मानना है कि जब तक जाति आधार नहीं टूटता है तब तक यह सामाजिक समस्या खत्म होनेवाली नहीं है।

अमेरिका का उदाहरण हमारे सामने है। वहां विभिन्न जातीय गुट थे लेकिन अंतरजातीय विवाह होने से वह एक राष्ट्र बना। यह सही है कि भारत में समस्या बहुत बड़ी है और इसका समाधान जल्द होनेवाला नहीं है। सरकार को अंतरजातीय विवाह करनेवालों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

बाल मजदूरी पर प्रतिबंध लगे वर्षों गुजर गए लेकिन लाखों की तादाद में बच्चे मजदूरी कर रहे हैं। शहर के किसी भी चौराहे पर आप चले जाएं वहां आपको चाय की दुकान पर एक छोटू या मुन्ना का छोटा बच्चा बर्तन साफ करता हुआ जरूर मिल जाएगा। इससे भारतीय समाज और यहां की हकीकत का अंदाजा लगा सकते हैं कि किस तरह सामाजिक स्तर पर इन कुरीतियों को कानूनन गलत होने के बावजूद जिंदा रखा गया है जोकि एक तरीके से सामाजिक हिंसा की श्रेणी में आता है। बाल मजदूरी समस्या नहीं बल्कि गरीबी की जानलेवा समस्या

का समाधान करने की बेबस कोशिश है। बाल मजदूरी सामाजिक हिंसा का रोग नहीं, उसका एक लक्षण है, रोक लगा देने से रोग मिट नहीं जाएगा।

यह बात सरकार को भी पता है, प्रतिबंध के बावजूद जब लाखों बच्चे-बच्चियां स्कूल जाने की जगह बर्तन घिस रहे हैं, इस पर सरकार को भी कहां कोई आश्चर्य हो रहा है। बाल मजदूर हर भारतीय व्यक्ति के जीवन का सत्य हैं, घर के अंदर नौकर-नौकरानियों की शक्ति में और बाहर चाय के ढाबों से लेकर स्कूटर के गैरेज और खतरनाक उद्योगों तक में। बाल मजदूरी ही नहीं, ऐसे अनेक सत्य हमारे सामने हैं जो कानूनन प्रतिबंधित हैं।

जहां जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ना इतना आसान है तो एक जटिल सामाजिक-आर्थिक दुरावस्था को सुलझाने की उलझन में कोई क्यों पड़ेगा? बनारस और लखनऊ के बुनकर आखिर किस इंस्टीट्यूट में बुनाई सीखते हैं, उन्हें यह हुनर बचपन से काम करके ही आता है। बच्चों का खेलने और स्कूल जाने की उम्र में मजदूरी करना दुखद है इसमें किसे संदेह हो सकता है, खतरनाक उद्योगों की बात और है, शोषण रोकने के प्रयास बहुत जरूरी हैं लेकिन प्रतिबंध समाधान नहीं है, हमारे समाज में चुभने वाली चीजों को नज़रों के सामने से हटाने की जल्दबाजी दिखती है लेकिन उन्हें ठीक करने की नहीं। बाल श्रम समस्या से बाहर निकल एक ऐसी सामाजिक समस्या पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिसकी वजह से देश की सबसे बड़ी जांच एजेंसी सीबीआई सवालियों के घेरे में है। ऑनर कीलिंग यानि आत्मसम्मान की खातिर अपने जिगर के टुकड़े को मौत के घाट उतार देने की वो खूनी रवायत जिसने भारतीय समाज के काले चेहरे को जमाने के सामने बेनकाब कर दिया है। जब भी गांव, जाति, गोत्र, परिवार की 'इज्जत' के नाम पर होने वाली हत्याओं की बात होती है तो जाति पंचायत या खाप पंचायत का जिक्र बार-बार होता है।

शादी के मामले में यदि खाप पंचायत को कोई आपत्ति हो तो वे युवक और युवती को अलग करने, शादी को रद्द करने, किसी परिवार का सामाजिक बहिष्कार करने या गांव से निकाल देने और कुछ मामलों में तो युवक या युवती की हत्या तक का फैसला करती है। लेकिन क्या है ये खाप पंचायत और देहात के समाज में इसका दबदबा क्यों कायम

है? इस विषय पर डॉक्टर प्रेम चौधरी का कहना है कि ऐसा चलन उत्तर भारत में ज्यादा नजर आता है लेकिन ये कोई नई बात नहीं है, ये खाप बहुत पुराने समय से चलता आया है....जैसे जैसे गांव बसते गए वैसे-वैसे ऐसी रिवायतें बनती गई हैं, ये पारंपरिक पंचायतें हैं। ये मानना पड़ेगा कि हाल-फिलहाल में इज्जत के लिए हत्या के मामले बहुत बढ़ गए हैं।

रिवायती पंचायतें कई तरह की होती हैं, खाप पंचायतें भी पारंपरिक पंचायतें हैं जो आजकल काफी उग्र नजर आ रही हैं, लेकिन इन्हें कोई आधिकारिक मान्यता प्राप्त नहीं है।

एक गोत्र या फिर बिरादरी के सभी गोत्र मिलकर खाप पंचायत बनाते हैं। ये फिर पांच गांवों की हो सकती हैं या 20-25 गांवों की भी हो सकती है, मेहम बहुत बड़ी खाप पंचायत है, और ऐसी और भी पंचायतें हैं। जो गोत्र जिस इलाके में ज्यादा प्रभावशाली होता है, उसी का उस खाप पंचायत में ज्यादा दबदबा होता है। कम जनसंख्या वाले गोत्र भी पंचायत में शामिल होते हैं। लेकिन प्रभावशाली गोत्र की ही खाप पंचायत में चलती है। सभी गांव निवासियों को बैठक में बुलाया जाता है, चाहे वे आएंगे या न आएंगे.... और जो भी फैसला लिया जाता है उसे सर्वसम्मति से लिया गया फैसला बताया जाता है और ये सभी पर बाध्य होता है। इसीलिए खाप पंचायतें संवेदनशील और भावुक मुद्दों को उठाती हैं ताकि उन्हें आम लोगों का समर्थन प्राप्त हो सके और इसमें उन्हें कामयाबी भी मिलती है।

खाप पंचायतों में लड़के-लड़कियों के खिलाफ फैसले तो होते रहे हैं लेकिन सिराल सिंह उन लोगों में से हैं जिनके फैसले का खामियाजा अब उनके परिवार को ही भुगतना पड़ रहा है। सात साल पहले जौणदी गांव में रिसाल सिंह ने उस खाप पंचायत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जिसने गोत्र विवाद को लेकर सात परिवारों को गांव से निकलने का हुक्म सुनाया था। समय का पहिया घूमा और रिसाल के पोते रवींद्र सिंह और उनकी पत्नी शिल्पा की शादी को लेकर उनके पूरे परिवार को गांव छोड़ने का दबाव झेलना पड़ा। असल में रविंद्र जब पांच साल का था जब उसकी बुआ उसको लेकर दिल्ली के सुल्तानपुर डबास गांव ले आई थी।

अप्रैल 2009 में रवींद्र की शादी हुई। शादी के कुछ महीने बाद रवींद्र अपनी पत्नी शिल्पा को लेकर अपने पुश्तैनी गांव ढराणा गए। वहां

महिलाओं ने बातों बातों में शिल्पा से उसका गांव और गोत्र पूछ लिया और जैसे ही ये बात आम हुई कि शिल्पा कादियान गोत्र की है विवाद शुरू हो गया।

रवीन्द्र-शिल्पा और उनके परिवार की मुसीबत शुरू हो गई। ढराणा गांव में कादियान गोत्र के लोग बहुमत में हैं और खाप पंचायत के नियम के हिसाब से शिल्पा इस गांव की बहू नहीं बन सकती थी। कादियान खाप ने पंचायत बुलाई और फैसला सुनाया कि अब इस परिवार के सामने दो विकल्प हैं पहला कि रवींद्र और शिल्पा की शादी तोड़ दी जाए और दूसरा ये खानदान गांव छोड़ दे। इस फरमान ने इस परिवार का जीना मुहाल कर दिया। रवींद्र किसी कीमत पर शिल्पा को नहीं छोड़ना चाहता। जब दोनों पर दबाव बढ़ा तो रवींद्र ने जहर खाकर जान देने की कोशिश की।

इस परिवार की हालत पर किसी को भी तरस आ सकता है। इन बीते सालों के बाद अब रिसाल सिंह का परिवार अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। खाप पंचायत के मुताबिक जब रिसाल सिंह ने सात साल पहले सात परिवारों को गांव से निकालने का फरमान दिया था तो अब वो अपने पोते को कैसे एक ही गोत्र में शादी की अनुमति दे सकते हैं।

रवींद्र ने पंचायत को वचन दिया है कि वो अपने पुश्तैनी गांव ढराणा में कभी कदम नहीं रखेगा पर पंचायत अब भी अड़ी है कि रिसाल सिंह के परिवार को गांव छोड़ना ही होगा। रिसाल सिंह की तीसरी पीढ़ी यानि रवींद्र कहते हैं कि इन पंचायतों को लोगों की जिंदगी के फैसले करने का कोई हक नहीं है। वो कहते हैं जमाना बदल चुका है।

रवींद्र की पत्नी कहती हैं अगर उसे पता होता कि उनकी शादी पर इतना बवाल होगा तो वो कभी ये शादी न करती।

जुलाई 2009 के आखिरी सप्ताह के इर्दगिर्द की कोई तारीख होगी जब हरियाणा के कैथल जिले के सिंहवाल गांव में पुलिस की मौजूदगी में वेदपाल नाम के युवक का कत्ल करके शव को चौराहे पर फेंक दिया गया। वेदपाल हाईकोर्ट के आदेश के बाद मिली पुलिस सुरक्षा के साथ अपनी पत्नी सोनिया को लेने उसके गांव गया था। ये कोई इक्का दुक्का मामला नहीं है। 100 से ज्यादा लड़के लड़कियों को जाति, गांव,

परिवार या समाज के इज्जत के नाम पर अपनी जान गंवानी पड़ती है। एक गैर सरकारी संगठन के सर्वेक्षण इंडियन पॉपुलेशन सर्वे के मुताबिक भारत में एक साल में कम से कम 650 लड़के लड़कियों को सम्मान के नाम पर जिंदगी से हाथ धोना पड़ता है। इनमें से 90 प्रतिशत से ज्यादा मामले हरियाणा पंजाब और पश्चिम उत्तर प्रदेश से जुड़े होते हैं।

क्या सम्मान के नाम पर होने वाली हत्याएं वास्तव में इतने बड़े पैमाने पर होती हैं? दूसरा यह कि वो मनोस्थिति क्या होती है जिसके वश में आकर मां-बाप या अन्य परिजन अपने ही बच्चों का कत्ल करने को तैयार हो जाते हैं? तीसरा यह कि खाप पंचायतें इन इलाकों में लोगों की निजी जिंदगी को कैसे नियंत्रित करती हैं?

## घरेलू हिंसा बनाम राजनीतिक हिंसा

भारतीय समाज में महिलाओं के खिलाफ हिंसा कोई नई बात नहीं है। इसे भारतीय समाज की विडंबना ही कहेंगे कि सभ्यता, संस्कृति और परंपरा के नाम पर समाज में महिलाओं को तरह-तरह से बंधनों में बांधने की कोशिशें की जाती रही हैं यही वजह है कि भारतीय समाज में महिलाओं के साथ अवमानना, यातना और शोषण की घटनाएं आम हो गई हैं। हलांकि अब हालात बदलने के आसार दिखाई देने लगे हैं लेकिन महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचार को रोकने की दिशा में अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। आजादी से पहले भारत में महिलाओं की स्थिति क्या थी ये बात न तो किसी से छुपी हुई है और न ही बताने की जरूरत है। लेकिन आजादी के बाद महिलाओं को समाज में पुरुषों के बराबर हक दिलाने की लाख कोशिशों के बावजूद अभी भी महिलाएं समाज के लगभग सभी क्षेत्र में पुरुषों के मुकाबले कहीं भी बराबरी करती दिखाई नहीं दे रही हैं। देश के कई हिस्सों में लड़कियों को बाल विवाह के बंधन बांधने की परंपरा आज भी जिंदा है। जबकि इसका विरोध गांधी जी आजादी के पहले से करते चले आ रहे थे। गांधी जी बाल विवाह के घोर विरोधी थे और इसे हानिकारक प्रथा मानते थे। उन्होंने कहा कि धर्म में जोर-जबर्दस्ती का तो हम विरोध करते हैं परन्तु धर्म के नाम पर अपने देश की तीन लाख से अधिक ऐसी बाल विधवाओं के ऊपर हमने वैधव्य का बोझ लाद रखा है जो बेचारी विवाह-संस्कार का अभिप्राय तक नहीं समझ सकतीं। बालिकाओं पर वैधव्य लादना तो पाश्विक अपराध है।

उन्होंने कहा कि स्त्रियों को अबला जाति मानना उनका अपमान है। ऐसा कहकर पुरुष स्त्रियों के प्रति अन्याय ही करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मैं स्त्री के रूप में जन्मा होता तो पुरुष के इस दंभ के विरुद्ध कि स्त्री पुरुष के मनोरंजन की वस्तु है, विद्रोह कर देता।

गांधी जी बाल विवाह, पर्दा-प्रथा, दहेज प्रथा और वेश्यावृत्ति के घोर विरोधी थे किन्तु विधवा विवाह के प्रबल समर्थक थे। उनका कहना था कि जो स्त्री निर्णय है और यह जानती है कि उसकी चारित्रिक निर्मलता उसकी सबसे बड़ी ढाल है, उसकी आबरू कभी नहीं लुट सकती। कई बार महिलाओं के घरेलू मुद्दों को भी राजनीतिक रंग दे दिया जाता है मसलन महिलाएं समाज में किस तरह का पहनावा पहनेंगी इस विषय पर समाज में बहस शुरू हो जाती है। समाज महिलाओं के ऊपर हो रही हिंसा के बारे में तो चुप्पी साधे रहता है लेकिन महिलाओं के अधिकारों को हमेशा अपने अधीन रखने की कोशिश करता है। जबकि होना चाहिए कि महिलाओं से जुड़े मुद्दे मसलन दहेज हत्या, भ्रूण हत्या, सती प्रथा, महिलाओं के साथ समाज में छेड़छाड़ की समस्या इत्यादि को लेकर समाज में खुली और स्वस्थ बहस होनी चाहिए ताकि समाज में मौजूद तमाम तरह की कुरीतियों का जड़ से सफाया हो सके। लेकिन अफसोस इसी बात का है कि इन तमाम मुद्दों पर समाज के तथाकथित अगुवा खामोशी की चादर ताने रहते हैं और जिन मुद्दों से उनका सरोकार नहीं है उन्हीं मुद्दों के जरिए समाज को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। भारत सरकार के आंकड़ों के मुताबिक 1996-98 के दौरान महिलाओं के विरुद्ध अपराध में 12 प्रतिशत की वृद्धि देखने को मिली। इसमें यातना देने के 31.5 प्रतिशत मामले, महिलाओं के साथ छेड़छाड़ के 23.6 प्रतिशत मामले, बलात्कार के 11.4 प्रतिशत मामले, शरीर व्यापार के 6.6 प्रतिशत मामले, दहेज की वजह से मृत्यु के 5.3 प्रतिशत मामले, यौन संबंधी उत्पीड़न के 6.2 प्रतिशत मामले, दहेज कानून के 2.6 प्रतिशत मामले और महिलाओं के अश्लील प्रदर्शन के 0.1 प्रतिशत मामले शामिल हैं। मोटे तौर पर कहा जाए तो हर 33 मिनट में किसी न किसी महिला के विरुद्ध अपराध का एक मामला घटित होता है। महिलाओं के विरुद्ध सबसे ज्यादा अपराध के मामले मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और राजस्थान में देखने को मिलते हैं। यह भी एक कटु सत्य है कि महिलाओं के मामले में घरेलू हिंसा के ज्यादातर मामले परिवार की प्रतिष्ठा के नाम पर घर की चारदीवारी के भीतर ही दबा दिए जाते हैं।

आठ फरवरी, 1994 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि कैसे हिरासत में एक महिला के उत्पीड़न के



दोषी पुलिस अधिकारी अपने खिलाफ निचली अदालतों के फैसलों में बार-बार ऊपरी अदालतों के हस्तक्षेप की मांग को लेकर पूरी कानूनी प्रक्रिया का मखौल उड़ा रहे हैं।

पुलिस को लतिका गुहा के पति पर नक्सलवाद आंदोलन से जुड़े होने का संदेह था और एक दिन उनकी तलाश में पुलिस उनके घर पहुंची। समीर गुहा के वहां न मौजूद होने पर पुलिस उनकी पत्नी लतिका और बहन अर्चना गुहा को पकड़ कर ले गई और फिर शुरू हुआ यंत्रणाओं का सिलसिला, इस दौरान अर्चना गुहा पर इतने जुल्म ढाए गए कि वह अपंग हो गई। कुछ साक्ष्यों के आधार पर तैयार रिपोर्ट का एक अंश जो उस उत्पीड़न की एक धुंधली सी तस्वीर पेश करता है। अर्चना गुहा को पूछताछ के लिए यंत्रणा कक्ष या टॉर्चर चैम्बर में बुलाया गया। उन्हें जमीन पर उकड़ू बैठने को कहा गया और उनकी साड़ी का आगे का हिस्सा पीछे के हिस्से से एक लंगोट की तरह बांध दिया गया। फिर उनके पांवों के टखनों को एक रस्सी के साथ कलाइयों से बांध दिया गया। फिर उनके घुटनों और कोहनियों के बीच एक डंडा डालकर उसे दो कुर्सियों पर टिका दिया गया और वह हवा में झूलने लगीं। इस पूरे समय उनका सिर नीचे लटक रहा था। इस रिपोर्ट में कुछ पुलिस अधिकारियों के नाम हैं जो पूरे समय अर्चना के पैरों पर पूरे जोर से लाठियों बरसा रहे थे। अर्चना गुहा बिना किसी आरोप पत्र या मुकद्दमे के तीन वर्ष जेल में रही। जब मई, 1977 में वह छूटीं तो उनके पांव बेजान हो चुके थे। उनके भाई ने पुलिस के खिलाफ एक मुकदमा दायर किया।

## देर से मिला न्याय

न्याय मिला उन्नीस साल बाद, लेकिन जैसे कि अंग्रेजी की एक कहावत है, 'जस्टिस डिलेड इज़ जस्टिस डिनाइड' वही इस मामले में हुआ। जुल्म ढाने वाले कुछ पुलिसकर्मियों की मौत हो चुकी थी और कुछ सेवा-निवृत्त हो चुके थे। इस मामले पर ऐमनेस्टी इंटरनेशनल जैसे मानवाधिकार संगठनों का ध्यान गया और अब अर्चना गुहा डेनमार्क में इलाज करा रही हैं। अर्चना गुहा या उनके परिवार ने न्याय के लिए संघर्ष किया तो इसलिए क्योंकि वे जानते थे कि उनके साथ अन्याय हुआ है क्या भारत में अधिकतर महिलाएं अपने कानूनी अधिकारों से

अवगत हैं। पटना में एक स्वयंसेवी संगठन से जुड़ी शांति ओझा कहती हैं, घरों में लड़कियों को इतने संरक्षण में रखा जाता है कि उनको कुछ सीखने या जानने का मौका ही नहीं मिलता।

भारत सरकार की वर्ष 1999 की अर्धवार्षिक रिपोर्ट के अनुसार उस वर्ष जनवरी से जून तक महिलाओं के खिलाफ अत्याचार के कुल 69,195 मामले दर्ज हुए थे। महिला उत्पीड़न के और भी कई रूप हैं। दहेज के लिए सताया जाना और सती-प्रथा चाहे अब इतना आम न भी रहा हो लेकिन लड़कियों के साथ बसों और दफ्तरों में छेड़-छाड़ आज भी जारी है।

### **महिलाओं पर अत्याचार सबसे बड़ी चुनौती : ऐमनेस्टी**

अंतर्राष्ट्रीय संस्था ऐमनेस्टी ने दुनिया भर में महिलाओं के खिलाफ हिंसा को मानवाधिकार की सबसे बड़ी चुनौती बताया है। संस्था ने चिंता जताई है कि महिलाओं के साथ बलात्कार किए जाने जैसे क्रूर अत्याचार बदस्तूर जारी है। 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा-उन्मूलन दिवस' के मौके पर अफ्रीका और अमरीका में जगह-जगह मार्च और रैलियां आयोजित की जाती हैं। दक्षिण अफ्रीका में सरकार ने केपटाउन में पुरुषों का आह्वान किया कि वे 'अच्छे पुरुष' मार्च में हिस्सा लें। सामाजिक विकास मंत्री जोला स्ववेयीया ने कहा, "यह समय है कि पुरुष भी आगे आएँ और महिलाओं और बच्चों के खिलाफ जघन्य हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठाएं।"

एक आकलन के अनुसार दक्षिण अफ्रीका एक ऐसा देश है जहां दुनिया में सबसे ज्यादा 147 प्रतिदिन बलात्कार होते हैं। ऐमनेस्टी की रिपोर्ट में कहा गया कि हर वर्ष दुनिया भर में बारह करोड़ लड़कियां खतना की पीड़ा से गुजरती हैं और अमरीका में ही हर साल सात लाख औरतों का बलात्कार होता है।

### **अपनों के ही हाथों**

रिपोर्ट में एक तथ्य यह सामने आया है कि बहुत सी महिलाएं अपने परिवार में ही या जानपहचान वालों के हाथों ही दुराचार का शिकार होती हैं और इनमें समृद्ध वर्ग की महिलाएं भी शामिल हैं। रिपोर्ट में दुनिया भर से इसकी मिसालें दी गई हैं। बांग्लादेश में जितनी महिलाओं की हत्या होती है उनमें से पचास प्रतिशत में उनके पति या

साथ रह रहे प्रेमी का ही हाथ होता है। ब्रिटेन में हर मिनट घरेलू हिंसा का शिकार एक न एक महिला टेलीफोन पर मदद की गुहार करती है। विश्व बैंक के एक आकलन के अनुसार हर पांच महिलाओं या लड़कियों में से एक अपनी जिंदगी में कभी न कभी मारपीट या यौन उत्पीड़न का शिकार हुई है।

घरेलू हिंसा का दंश क्या घर से बाहर निकलने वाली महिलाओं पर कम हुआ है। अगर आप सोच रहे हैं हां तो आप सही नहीं है। 21वीं शताब्दी में महिलाओं का घर की दहलीज लांघकर नौकरी पर जाना महिला सशक्तिकरण से जोड़कर देखा जाता होगा लेकिन कामकाजी महिलाओं पर घरेलू हिंसा को लेकर किए गए शोध में चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं। शोध के मुताबिक शादीशुदा महिलाएं जो काम पर जाती है उन्हें घरेलू हिंसा का ज्यादा खतरा झेलना पड़ता है। इस शोध के लिए बैंगलुरु की 750 कामकाजी महिलाओं को चुना गया। इनकी उम्र 15-20 साल की थी। इन महिलाओं से दो साल में तीन बार साक्षात्कार किया गया। साक्षात्कार में पाया गया कि जो महिलाएं नौकरी नहीं करती थीं उन्हें नौकरी करने के बाद घरेलू हिंसा का ज्यादा दर्द झेलना पड़ा। ये शोध आरटीआई इंटरनेशनल विमन ग्लोबल हेल्थ इम्पेरेटिव, भारतीय प्रबंधन संस्थान, बैंगलुरु और महिलाओं के मामले पर शोध करने वाली संस्था इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च ऑन विमन ने किया है। शोध में ये तथ्य निकलकर आया कि जिन महिलाओं के पति को नौकरी मिलने में दिक्कत आ रही थी या नौकरी में मुश्किल आ रही थी उन्हें दोगुना घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ा। ये अध्ययन भारत में घरेलू हिंसा के बढ़ते स्तर को दर्शाता है। इस अध्ययन में शामिल 57 फीसदी महिलाएं इस शोध में शामिल होने से पहले ही घरेलू हिंसा का शिकार हो चुकी थीं। जबकि 19 फीसदी महिलाओं ने इस अध्ययन से पहले घरेलू हिंसा का सामना नहीं किया था। वहीं एक चौंकाने वाला तथ्य ये था कि जिन महिलाओं ने प्रेम विवाह किया था उन्हें घरेलू हिंसा की दोगुनी मार झेलनी पड़ी। अध्ययन के अनुसार ये सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध चलने वाली महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभाव का सूचक है। इस विषय पर शोध कर चुकी सुनीता कृष्ण कहती हैं कि महिला सशक्तिकरण से जुड़ी चुनौती जटिल है। उनका कहना था, “जहां महिलाओं के लिए रोजगार बढ़े हैं वहीं इससे जुड़े सामाजिक असर पर ष

यान देना भी जरूरी है। हमने जो अध्ययन किया है वो इस बात का सबूत है कि महिलाओं और पुरुषों के काम में तेजी से हो रहे बदलाव ने मुश्किलें खड़ी कर दी हैं जिसमें महिलाओं के खिलाफ हिंसा भी शामिल है।” महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा को रोकने के लिए 2006 में कानून लागू किया गया था। इसमें मार पिटाई के साथ-साथ जबरदस्ती यौन शोषण, भावनात्मक स्तर पर यातना और अपमान शामिल है। इस मामले में पति पर 20 हजार रूपए का जुर्माना और तीन महीने की सज़ा हो सकती है। इन तमाम कानूनी प्रावधान के बावजूद महिलाएं अपने घर में ही सुरक्षित नहीं हैं।

भारत की औद्योगिक राजधानी मुंबई में रहने वाली 92 साल की लक्ष्मीबाई का आरोप है कि उनके पोते और दामाद ने उनकी पिटाई की है। वो बताती हैं, “मेरे पोते और दामाद मुझे बुरी तरह मारते जा रहे थे। कहते थे, हम तुम्हें मार देंगे।” “मेरी उम्र हो चुकी है और मैं अपना बचाव नहीं कर पा रही थी। मेरे शरीर पर कई जगह से खूने निकल रहा था। इसके बाद उन्होंने मुझे किसी गठरी की तरह कार में फेंका और मेरी बेटी के घर लाकर पटक दिया।” लेकिन लक्ष्मी के पोते विनय पालेजा इन आरोपों से इनकार करते हैं। उनका कहना है, “मैंने तो अपनी दादी को हाथ तक नहीं लगाया। उन्होंने खुद अपने आप को घायल कर लिया है। मुझे नहीं मालूम कि वो हम लोगों के खिलाफ इस तरह के आरोप क्यों लगा रही हैं।” अपनी बेटी के घर इलाज करा रहीं लक्ष्मीबाई का कहना है कि उनके पास अब कुछ नहीं बचा है। इस बुजुर्ग महिला के पास जो थोड़ी बहुत जमीन और सोना था वो उन्होंने अपने और अपने बेटे के इलाज के लिए बेच दिया। लेकिन उनके परिवार उनके इलाज के लिए एक पैसा खर्च नहीं किया। ये मामला अब अदालत में जाएगा, लेकिन लगता नहीं कि इंसानों के तब तक लक्ष्मीबाई जिंदा रह पाएं।

## टूटते संयुक्त परिवार

भारत में पिछले कुछ सालों में बुजुर्गों को मारने-पीटने और घर से निकाल देने के मामले काफी तेजी से बढ़े हैं। भारत जिसकी संस्कृति ये है कि बच्चे अपने बुजुर्गों के पैर छूकर उनका आशीर्वाद लेते हैं, जहां संयुक्त परिवार में एक साथ तीन पीढ़ियां एक छत के नीचे हंसी-खुशी

अपना जीवन यापन करती हैं। ये संयुक्त परिवार बुजुर्गों के लिए उनके आखिरी वक्त में एक बड़ा सहारा हुआ करते थे। लेकिन अब हालात बदल चुके हैं। ज्यादा से ज्यादा बच्चे अब अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए अपने पैतृक घरों को छोड़ रहे हैं। समाजशास्त्रियों का मानना है कि नौजवानों में आधुनिक तौर-तरीके से जीने की ललक और व्यक्तिगत जिंदगी गुजारने की सोच की वजह से बुजुर्ग इस तरह से जीने के लिए मजबूर हैं। कई मामलों में तो उन्हें बुरी-बुरी गालियां तक सुननी पड़ती हैं।

### **कानून का सहारा**

वृद्धों के साथ हो रहे सौतेले बर्ताव को देखते हुए भारत सरकार ने पिछले दिनों एक नया विधेयक भी तैयार किया था। बुजुर्गों और माता-पिता के कल्याण के लिए तैयार किए गए इस विधेयक के मुताबिक ऐसे बच्चों को तीन महीने की सजा भी हो सकती है, जो अपने माता-पिता की देखरेख से इनकार करते हैं। इस कानून के मुताबिक अदालत अगर आदेश देती है तो बच्चों को अपने बुजुर्गों के लिए भत्ता भी देना होगा। भारत में बुजुर्गों की मदद के लिए काम करने वाली स्वयं सेवी संस्था हेल्पएज इंडिया की शोध बताती है कि अपने परिवार के साथ रह रहे करीब 40 प्रतिशत बुजुर्गों को मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। लेकिन छह में से सिर्फ एक मामला ही सामने आ पाता है। दिल्ली पुलिस के वरिष्ठ नागरिक सेल के केवल सिंह मानते हैं कि बुजुर्ग माता-पिता के लिए अपने बच्चों के खिलाफ ही शिकायत करना काफी मुश्किल होता है। वो कहते हैं, “जब इस तरह के बुजुर्ग अपने बच्चों के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज कराने का फैसला कर लेते हैं तो उनका रिश्ता अपने परिवार से पूरी तरह टूट जाता है। उनका कहना था, “इस तरह के मामलों में हमेशा कानून और जज्बात के बीच द्वंद्व चलता रहता है।”

### **मजबूर बुजुर्ग**

कुछ इसी तरह का मामला दक्षिण भारतीय राज्य तमिलनाडु के इरोड शहर में भी सामने आया। यहां 75 साल की एक वृद्ध महिला शहर के बाहरी हिस्से में पड़ी पाई गई थी। लोगों का आरोप था कि उनके नाती

और दामाद ने उन्हें वहां लाकर डाल दिया था। कुछ दिनों के बाद इस वृद्धा की मौत हो गई थी। लेकिन उनकी बेटी तुलसी का कहना था, “मेरी मां कई वर्षों से मेरे साथ रह रही थी लेकिन एक रात वो अचानक बड़बड़ाने लगी और पूरी रात बोलती ही रहीं। हमने उन्हें मना भी किया लेकिन वो नहीं मानीं और अचानक घर छोड़कर चली गईं।”

### **बढ़ते वृद्ध आश्रम**

गरीबी और रोजगार की तलाश में बच्चों के बाहर जाने की वजह से बुजुर्गों को इस तरह का बर्ताव झेलना पड़ रहा है। भारत में सात करोड़ से ज्यादा आबादी बुजुर्गों की है। अगले 25 वर्षों में ये 10 करोड़ तक पहुंच जाएगी। सरकार ने भी देश भर में 600 वृद्ध आश्रम तैयार कराने को मंजूरी दे दी है। हेल्पएज इंडिया के मैथ्यू चेरियन का मानना है कि कानून बनाने से ये समस्या हल नहीं होने वाली है। उनका कहना है, “आप परिवारों को टूटने से नहीं रोक सकते। हम संयुक्त परिवार का ढांचा दोबारा नहीं विकसित कर सकते। लिहाजा हमें और वृद्ध आश्रम बनाने होंगे।” उनका कहना था, “तीस साल पहले जब हेल्पएज इंडिया ने वृद्ध आश्रम तैयार किए थे तो लोगों ने कहा ये तो पश्चिमी तरीका है। लेकिन आज हर कोई मान रहा है ये पश्चिमी तरीका नहीं ये हकीकत है।”

घरेलू हिंसा की दुनिया से बाहर निकल तत्कालीन गृहमंत्री ने कहा कि धारा 356 का इस्तेमाल विशेष परिस्थितियों में और बहुत आवश्यक होने पर तब किया जाता है जब आर्थिक और राजनीतिक ढांचा चरमरा जाए और कानून और व्यवस्था का शासन नहीं हो। उन्होंने पश्चिम बंगाल में धारा 356 लगाने की विपक्ष की मांग पर कहा कि पहले भी कई राज्यों में हिंसा की घटनाएं हुई हैं और उस समय विपक्ष सत्ता में था लेकिन वहां पर इस धारा का इस्तेमाल नहीं किया गया। श्री पाटिल ने कहा था कि संविधान के रचयिताओं ने भी कहा था कि धारा 355 और 256 का इस्तेमाल विशेष स्थितियों में ही किया जाना चाहिए। इस संबंध में भीमराव अंबेडकर ने कहा था कि वे उम्मीद करते हैं कि ऐसी स्थिति नहीं आएगी कि इन धाराओं का इस्तेमाल करना पड़े। लेकिन अगर ऐसी स्थिति आती है तो इन धाराओं को बहुत सावधानी से लागू किया जाना चाहिए।

## हिंसा के जिम्मेदार

तत्कालीन गृहमंत्री शिवराज पाटिल ने कहा कि नंदीग्राम की हिंसा में नक्सली, माओवादी या कोई अन्य गुट शामिल हो सकता है और इस बारे में उनके पास कुछ जानकारी है लेकिन उस जानकारी को सदन में बताना सुरक्षा बलों के हित में नहीं होगा। श्री पाटिल ने कहा था कि, “निर्दोष लोगों को गोली मार कर राज करना हिंदुस्तान में नहीं चलेगा।” उन्होंने कहा कि नक्सली या किसी अन्य हिंसा का हल गोली मारना नहीं बल्कि सुधार करना है। केवल आलोचना करने से इसका हल नहीं निकलेगा। “हिंसा करने वालों और हमारे बीच काफी फर्क है। हम लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं, वो नहीं, हम कानून के शासन में विश्वास रखते हैं, वो बंदूक में।” हिंसा का मुकाबला सिर्फ बंदूक से नहीं बल्कि बातचीत से, आर्थिक न्याय से और समग्र रवैये के साथ किया जाएगा।

घरेलू हिंसा के अधिकतर मामलों में शादी के बाद होने वाले विवाद से जुड़े मामले भी शामिल होते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इस बात पर चिंता जताई है कि हिंदू विवाह अधिनियम जितने घर बसा नहीं रहा, उससे ज्यादा घरों को तोड़ रहा है। तलाक के एक मामले की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट के दो जजों की एक पीठ ने यह टिप्पणी की है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि तलाक के बढ़ते मामलों का बुरा असर परिवार के बच्चों पर पड़ता है।

## तलाक और चिंता

वर्ष 1955 में बने इस कानून में कई बार संशोधन किया जा चुका है। इसमें हिंदू विवाह की वैधता, वैवाहिक अधिकार और तलाक को परिभाषित किया गया है। पहले भारतीय विवाह पद्धति में तलाक का कोई प्रावधान या प्रचलन नहीं था और संसद ने कानून पारित करते हुए जब इसमें तलाक का प्रावधान किया तो इसे ब्रिटिश कानून से लिया गया था। तलाक ले चुके दंपति के बीच बच्चे को रखने के मामले की सुनवाई करते हुए न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत और न्यायमूर्ति जीएस सिंघवी ने कहा, “हिंदू विवाह अधिनियम घर जोड़ने से ज्यादा तोड़ रहा है।” उन्होंने कटाक्ष करते हुए कहा कि, “अब तो शादी के समय ही तलाक की अग्रिम याचिका तैयार कर ली जाती है।” पीठ ने कहा,

“मां-बाप को बच्चों की खातिर अपने अहं को दरकिनार कर देना चाहिए।” अदालत का कहना था कि अलग होकर रहने वाले पति-पत्नी की तुलना में बच्चों का भविष्य ज्यादा महत्वपूर्ण है। पीटीआई की खबरों के मुताबिक न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत ने कहा, “आखिरकार तकलीफ बच्चे को होती है। यदि वह लड़की हुई तो उसकी पीड़ा बढ़ जाती है। खासकर उसके अपने विवाह के वक्त।” अदालत का कहना था कि पारिवारिक जीवन में पहले भी समस्याएं आती थीं लेकिन उन्हें घर के भीतर ही सुलझा लिया जाता था।

हिंदू विवाह अधिनियम के अनुसार तलाक लेने के लिए कई आधार बताए गए हैं। जिनमें विश्वासघात, क्रूरता, धर्मपरिवर्तन, मानसिक रोग, यौनरोग आदि शामिल हैं। बढ़ते पारिवारिक विवाद और कलह की वजह से पारिवारिक जिंदगी में बढ़ते खटास और सामाजिक ताने बाने को टूटने से बचाने के लिए कई कदम उठाए जा रहे हैं। इसी के तहत अब खासतौर से फैमिली कोर्ट खोले जा रहे हैं। फैमिली कोर्ट की शुरुआत रोहिणी कोर्ट कॉम्प्लेक्स में की गई। इस कोर्ट में कोर्ट जैसा भारी माहौल नहीं होगा। कोर्ट में जज और वकील के अलावा मनोचिकित्सक होंगे। साथ ही काउंसलर होंगे, जो दो पक्षों के बीच बातचीत से सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने की कोशिश करेंगे। कोशिश यह रहेगी कि दोनों पक्षों में समझौता हो जाए और सालों से चल रहा कानूनी विवाद खत्म हो जाए। बाद की योजना है कि फैमिली कोर्ट में हिंदू अडॉप्शन ऐक्ट, जमीनी विवाद, घरेलू हिंसा कानून व दहेज प्रताड़ना से संबंधित मामलों की सुनवाई भी की जाएगी। राजधानी में कुल 35 फैमिली कोर्ट शुरू किए जाने की योजना है। आमतौर पर अदालतों में जज और वकील होते हैं, लेकिन यह ऐसी अदालतें होंगी, जहां जज और वकील के साथ मनोचिकित्सक व काउंसलर भी होंगे। पहले दोनों पक्षों को जज खुद सुनेंगे और जरूरत के हिसाब से मनोचिकित्सक और काउंसलर को केस रेफर करेंगे। मनोचिकित्सक व काउंसलर दोनों पक्षों को सुनकर उनके बीच गलतफहमी को दूर करने की कोशिश करेंगे। लेकिन तमाम प्रयासों में दोनों पक्षों का सकारात्मक रवैया काफी अहम रोल अदा करेगा। अगर दोनों पक्षों के बीच समझौते की थोड़ी भी गुंजाइश होगी, तो उनमें समझौता कराने की कोशिश की जाएगी। अदालत का प्रयास रहेगा कि एक से दो तारीखों में मामले में समझौता हो जाए और



मामले का निपटारा हो जाए। कोर्ट रूम के पास ही बच्चों के लिए भी कमरा बनाया गया है, जहां वे बच्चे अपना समय गुजार सकेंगे, जिनके माता-पिता के मामले की सुनवाई चल रही होगी। बच्चों के कमरे में तमाम खेलने की सुविधाएं दी गई हैं। खिलौने के अलावा वहां टी वी लगाया गया है, जिसमें बच्चे कार्टून आदि देख सकेंगे।

जिला अदालत की वेबसाइट के मुताबिक, राजधानी की तमाम निचली अदालतों में अभी 6.086 मामले लंबित हैं। ये मामले सालों साल अदालतों में चलते हैं और निचली अदालत के फैसले के बाद मामला कई बार हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक जाता है। ऐसे में फैमिली कोर्ट में प्रयास यही रहेगा कि दोनों पक्षों के बीच चल रहे कानूनी विवादों का बातचीत से निपटारा हो जाए और दोनों पक्षों के बीच किसी तरह का कोई विवाद आगे न बढ़ पाए। जानकारों का कहना है कि फैमिली कोर्ट के कन्सेप्ट के बाद यह उम्मीद की जा रही है कि इस तरह के विचाराधीन केसों में काफी कमी आएगी और समाज में पारिवारिक संरचना पर आंच नहीं आएगी।

उड़ीसा के सरायकेला जिले में महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा समेत अन्य मामलों पर संवेदनशीलता बरतते हुए इसके नियंत्रण को लेकर जिला एवं सत्र न्यायाधीश कुमार गणेश दत्त ने भी काफी कुछ किया है। इसके तहत श्री दत्त ने जिले के न्यायिक व पुलिस पदाधिकारियों को घरेलू हिंसा कानून के संबंध में जानकारी देते हुए आरक्षी अधीक्षक अभिषेक की उपस्थिति में जिले में इस कानून के प्रति बेरुखी पर अफसोस जाहिर किया। जिला जज श्री दत्त ने कहा कि महिलाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा पर नियंत्रण करना व इसके कानून की जानकारी देना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि यह कानून वर्ष 2005 में बनाया गया तथा 24 अक्टूबर 2006 से लागू हुआ पर इसका प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। इस कानून की जानकारी देते हुए उपस्थित सभी थाना प्रभारियों से जिला जज ने कहा कि भुक्तभोगी महिला अगर उनके क्षेत्र में आती है तो भा. दं. वि. की न्यायसंगत धाराओं के तहत मामला दर्ज करते हुए घरेलू हिंसा पर बने विभिन्न नियम व उपनियमों की थानावार जानकारी की व्यवस्था करवाने की अपील आरक्षी अधीक्षक से की जाए। घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत मुख्यतः किसी भी महिला को हर प्रकार से त्वरित न्यायिक सहयोग उपलब्ध करवाने का प्रावधान

है। उन्होंने कहा कि आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक व मानसिक रूप से प्रताड़ित महिला क्षेत्र के मजिस्ट्रेट, थाना प्रभारी, सीडीपीओ व अधिकृत स्वयंसेवी संस्था के पास जाकर अपनी व्यथा सुना सकती है। घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत उन्हें त्वरित सहायता प्राप्त होगी। इस कानून के तहत मामला दर्ज कराने वाली महिला होगी पुरुष नहीं। जबकि मामला महिला व पुरुष दोनों के विरुद्ध दर्ज हो सकता है। उन्होंने घरेलू हिंसा अधिनियम की विस्तृत जानकारी दी।

## हिंसा का खूनी चेहरा

महानगरों और उससे सटे इलाको में समाज के निचले तबके में हिंसा का जहर इस हद तक घुल चुका है कि वो अपनी तमाम छोटी-बड़ी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए हिंसा का सहारा लेने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। मामला चाहे घरेलू हो या फिर बाहरी। ऐसी ही एक वारदात राजधानी दिल्ली से सटे नोएडा की है। तारीख 15 अक्टूबर 2009, स्थान नोएडा का सेक्टर 20 का इलाका। यहां पति ने पत्नी को चाकू मारकर बुरी तरह लहलुहान कर दिया। पति का नाम रामकुमार है जबकि उसकी घायल पत्नी का नाम शीला है दोनों हरौला गांव के शर्मा मार्केट के पास किराए के एक मकान में रहते हैं। पुलिस के मुताबिक पति-पत्नी के बीच किसी बात को लेकर आपसी विवाद इतना बढ़ गया कि आरोपी रामकुमार अपनी ही पत्नी की जान का दुश्मन बन गया। (नई दुनिया)। ऐसी ही एक वारदात राजधानी दिल्ली के जामिया नगर इलाके में सामने आई जहां शादी से इनकार करने पर अफरोज नाम के युवक ने समीना और अमीना पर तेजाब फेंक दिया। दोनों लड़कियां रिश्ते में सगी बहन हैं। बुरी तरह से जख्मी हालत में इन दोनों बहनों को सफदरजंग अस्पताल में भर्ती कराया गया। (नई दुनिया)। ऐसे मामलो पर अगर गौर करें तो महानगरों में जीवन यापन की खातिर जिंदगी गुजर बसर करने वाले लाखों ऐसे लोगों की कहानी यह घटना बयां कर देती है, जिसकी मिसाल दिल्ली ही नहीं देश के तमाम बड़े शहरों में देखी जा सकती है। इन दोनों ही मामलों में पीड़ित और आरोपित दोनों का ताल्लुक समाज के निचले तबके से हैं अगर ऐसे मामलों में संयम और होशियारी से काम लिया जाता तो ऐसे हिंसक वारदातों से न सिर्फ बचा जा सकता था बल्कि इस तरह की समस्याओं का सम्मानजनक हल भी निकाला जा सकता था।

## मानवता के चेहरे पर काला धब्बा है हिंसा

नौ महीने, आठ थाना क्षेत्र और एफआईआर 12 हजार से भी ज्यादा। इस एक वाक्य पर पैनी नज़र दौड़ाने पर पूरी तस्वीर साफ हो जाती है कि किस कदर समाज में हिंसक वारदातों की संख्या दिनों दिन आसमान छूती जा रही है। क्राइम का ये आंकड़ा है दिल्ली से सटे गाजियाबाद का। क्राइम नंबर में सबसे टॉप पर है इंदिरापुरम का इलाका। जहां 24 सौ से ज्यादा मुकदमें दर्ज किए जा चुके हैं। इसके बाद नंबर आता है साहिबाबाद का और लोनी तीसरे स्थान पर है। शांति बर्दाशों से निपटने के लिए पुलिस गश्त करें, वीआईपी ड्यूटी बजाए अथवा लंबित मामलों की विवेचना के लिए समय निकाले। पुलिस बल की कमी की वजह से यह गड़बड़ी है। शहर में अपराध का ग्राफ तेजी से बढ़ रहा है। इसके साथ पुलिस पर मामलों की विवेचना का दबाव भी है। वर्ष 2009 में जनवरी से लेकर सितंबर यानि पिछले नौ महीने के भीतर आठ थाना क्षेत्रों में ताबड़तोड़ वारदातें होने से आम आदमी और कारोबारियों में दहशत का आलम है। मुकदमों की फेरहिस्त दिनोंदिन लंबी होती जा रही है।

दर्ज मामले	थाना	दर्ज मामले	थाना
2435	इंदिरापुरम	2073	लोनी
1791	साहिबाबाद	1654	कविनगर
1316	कोतवाली थाना	1215	विजय नगर
1109	सिहानी गेट	544	लिंग रोड

राजधानी दिल्ली से सटे एनसीआर के इलाकों में अगर हिंसक मामलों की ये स्थिति है तो देश के दूर-दराज के इलाकों में क्या हालत होगी। इसका अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। हाल के दिनों में बाल अपराधियों की संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी देखने को मिल रही है। बिहार के सहरसा जिले में पिछले आठ महीने में ही पुलिस ने एक दर्जन से अधिक ऐसे बाल अपराधियों को गिरफ्तार किया है, जिनकी मासूमियत को देखकर उनके कारनामों पर सहसा यकीन नहीं होता। इन बच्चों की गिरफ्तारी चोरी, लूट, अपहरण, आर्म्स एक्ट से लेकर हत्या तक के मामले में हुई है। इसे छोटे शहरों में क्राइम का बदलता ट्रेंड कहें या आपराधिक गिरोहों की रणनीति का हिस्सा या फिर तीव्र गति से बदलती

सामाजिक संरचना का प्रभाव।

बाल अपराधियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। अब बच्चे कलम की जगह पिस्तौल लेकर चल रहे हैं। पुलिस भी स्वीकार करती है कि अपराधी गिरोह बच्चों की मासूमियत का फायदा उठा रहे हैं। सहरसा के एसपी राजेश कुमार के मुताबिक बाल अपराधियों को चिन्हित करने में पुलिस को खासी परेशानी का सामना करना पड़ता है ऐसे में उन्होंने बच्चों के माता-पिता से अपने लाडलों की गतिविधियों पर नजर रखने और उन्हें सही राह दिखाने की अपील की।

आंकड़ों पर गौर करें तो 31 जनवरी 2009 सदर पुलिस ने वाहन चेकिंग के दौरान एक देसी पिस्तौल, कारतूस और चाकू के साथ रणवीर झा को गिरफ्तार किया था। उसकी उम्र मजह 17 वर्ष थी। उसने लूट की कई वारदातों में शामिल होने की बात भी स्वीकार की थी। 23 फरवरी 2009 को बैजनाथपुर ओपी पुलिस ने गम्हरिया गांव स्थित बिन्दो यादव के दरवाजे पर अपराध की योजना बना रहे पटुआहा गांव निवासी अंकुश कुमार उर्फ टनटन, बैजनाथपुरी निवासी अम्बिक कुमार, केशव कुमार, गम्हरिया गांव निवासी सुबोध कुमार को असलहे के साथ गिरफ्तार कर लिया। सभी की उम्र 15 से 18 साल के बीच थी। पुलिस ने इनके पास से अमेरिका में बने छह राउंड की पिस्तौल, देसी पिस्तौल, जिंदा कारतूस, खूखरी और दो बड़े चाकू बरामद किए।

पूछताछ में पता चला कि सभी छात्र हैं और अलग-अलग जगह पढ़ते हैं। एक सप्ताह के भीतर हुई राहजनी की तीन वारदातों से आजिज हुई सदर पुलिस ने 13 अप्रैल 2009 की रात जब सिविल वर्दी में रिक्रेशे पर बैठकर लुटेरों का पता लगाने निकली तो शहर के जिला स्कूल के समीप तीन अपराधियों ने हथियारों के बल पर रिक्रेशा रुकवाया पर पहले से तैयार थानाध्यक्ष रंजीत वत्स ने अन्य पुलिसकर्मियों के सहयोग से तीन अपराधियों को धर दबोचा। लेकिन इस गिरोह का सरगना अजय यादव मौका-ए-वारदात से भागने में कामयाब रहा। पकड़े गए अपराधियों में इस्लामियां चौक का राजवंश राय, फकीर टोला का विशाल चौधरी और शंकर झा शामिल है। ये सभी नौवीं-दसवीं कक्षा के छात्र हैं पुलिस ने इनके पास से दो लोडेड देसी पिस्तौल, चार जिंदा कारतूस, एक चाकू और तीन मोबाइल फोन बरामद किया।

19 जुलाई 2009 को सदर थाना क्षेत्र के नरियार गांव में राजकुमार

ने बिजलपुर गांव के दो अन्य लोगों के साथ मिलकर अपने ही दोस्त खुशीलाल दास उर्फ छोटेलाल की गला रेत कर हत्या कर दी। बताया जाता है कि राजकुमार गत वर्ष ही मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बाद में राजकुमार ने कोर्ट में आत्मसमर्पण कर दिया। चोरी की बढ़ती घटनाओं के बीच जब सदर पुलिस ने 24 जुलाई 2009 को बंगाली बाजार स्थित एक होटल से 12 से 15 वर्ष के सुनील राम, प्रणव साह, छोटे कुमार राम नामक तीन बच्चों को पकड़ा तो उनके चेहरे की मासूमियत को देखकर लोगों को विश्वास नहीं हो रहा था। 10 अगस्त को जिला स्कूल के बाहर नौवीं वर्ग के एक छात्र ने अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर अपने ही सहपाठी रमेश झा रोड निवासी सुधीर सर्राफ के पुत्र शेखर सर्राफ को सिर्फ इसलिए चाकू मार कर घायल कर दिया, क्योंकि उसने परीक्षा के दौरान उसे नकल नहीं करने दी थी। 12 अगस्त 2009 को सोनवर्षा राज थाना क्षेत्र के गढ़बाजार गांव में भवेश कुमार यादव उम्र 16 साल ने अपने पिता चंदेश्वरी यादव की गोली मारकर हत्या कर दी और शव को मक्के के खेत में फेंक दिया।

सर्वनारायण सिंह रामकुमार महाविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर डा. कमलेश प्रसाद सिंह इन तमाम कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि बाल अपराधियों की संख्या में वृद्धि का सबसे बड़ा कारण संयुक्त परिवार का बिखराव है। इलेक्ट्रॉनिक चैनल, हिंसक फिल्म व टेलीविजन के साथ साथ भौतिकवाद के बहकावे में आकर बच्चे अपनी आवश्यकता को जल्द पूरा करने के लिए अपराध को आसान हथियार मान बैठते हैं। बदले हुए सामाजिक परिवेश में माता-पिता बच्चे पर समय नहीं दे पाते हैं। नतीजा बच्चे उस गलत राह पर आगे निकल जाते हैं जहां उनका गुनाह के दलदल में फंसना तय होता है।

24 अक्टूबर 2009 को जबलपुर में एक युवक ने पड़ोसी के साथ हुए विवाद और सरकारी महकमों की उपेक्षा से तंग आकर परिवार के छह लोगों और पड़ोसी सहित सात लोगों को मौत के घाट उतार दिया। मरने वालों में तीन मासूम और तीन बच्चे शामिल थे। मामला पानी निकासी का था। लेकिन आसपास रहने वाले दो परिवार इस मामले को न तो सुलझा पाए और न ही मामले की गंभीरता को समझ पाए। बार-बार शिकायत करने के बावजूद सरकारी अधिकारियों ने भी इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। सभी की नींद तब खुली जब सैनिक सोसाइटी में रहने

वाले सुनील सेन ने सात लोगों को मौत के घाट उतार दिया। दरअसल जब भी सुनील शिकायत करने जाता था, उसे ही परेशान किया जाता था। हार थक कर उसने इस जघन्य कांड को अंजाम देने का फैसला कर लिया। लेकिन इसके लिए पुलिस से ज्यादा समाज दोषी है। क्योंकि ऐसी समस्याओं को आपस में मिल बैठकर भी सुलझाया जा सकता है। लेकिन इसके लिए किसी न किसी को पहल करनी चाहिए। साथ ही एक अच्छे पड़ोसी होने के नाते आपको दूसरों की जायज समस्या पर भी गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। हो सके तो उसकी भरपूर मदद करनी चाहिए। क्योंकि पेशानी कभी भी किसी के साथ हो सकती है। जबलपुर का सुनील इस बात का उदाहरण है। सुनील के पड़ोसियों के मुताबिक वह डबल एम.ए. करने के बाद कपड़े का व्यापार करता था। शहर में उसकी दुकान है। फिलहाल पुलिस ने उसको गिरफ्तार कर लिया है। लेकिन इस जघन्य अपराध ने जबलपुर वासियों के दिलों में खौफ जरूर पैदा कर दिया है।

यही नहीं महानगरों में रहने वाले लोगों के भीतर हताश होने की भावना भी तेजी से सिर उठने लगी है। महानगरों में लोगों के पास पैसा, इज्जत, शोहरत और दूसरी तमाम चीजे मौजूद हैं। लेकिन इसके बावजूद महानगरों में तेजी के साथ आत्महत्याओं की घटनाएं बढ़ रही हैं। कभी परीक्षा में अच्छे नंबर नहीं मिलने और माता पिता की उम्मीदों पर खरा न उतरने पर कोई छात्र आत्महत्या कर लेता है तो कोई पढ़ा लिखा युवक नौकरी न मिलने से अवसाद से ग्रसित हो जाता है।

### **क्या कहते हैं मनोचिकित्सक**

मनोचिकित्सक आर के बंसल का कहना है कि मौत को गले लगाना किसी भी चीज का समाधान नहीं है। कम समय में जल्दी से आगे बढ़ने की सोच इंसान को आत्महत्या की ओर ले जा रही है। इसलिए लोगों को किसी भी समस्या के प्रति घबराने या जल्दबाजी में कोई गलत कदम उठाने की बजाए संयम और हिम्मत से काम लेना चाहिए।

### **बदल रही हैं आत्महत्या की वजह**

वक्त के साथ-साथ अब आत्महत्या के पीछे की वजह भी बदलती नजर आ रही है। पहले घरेलू कलह की वजह से अधिकतर लोग

आत्महत्या करते थे। लेकिन अब अपने गर्लफ्रेंड या ब्यायफ्रेंड का प्यार न पाना, कम समय में आगे न बढ़ पाना, खर्च के मुताबिक जल्द पैसे न कमा पाना आदि कारण उभर कर सामने आ रहे हैं। माता-पिता का दबाव भी अधिकांश बार युवाओं को इस ओर धकेल रहा है। अभिभावकों को भी चाहिए कि वह अपनी संतानों से मेहनत के अनुसार ही लक्ष्य की उम्मीद करें। इसके अलावा बच्चों में संघर्ष करने की क्षमता पैदा करनी होगी। माता-पिता को चाहिए कि वह वे बच्चों को अकेलापन न महसूस होने दें। सामाजिकता की कमी होने की वजह से आत्महत्या की घटनाओं में ज्यादा तेजी आई है। किसी भी परिस्थिति में असफलता हाथ लगने पर आत्महत्या की बजाए स्वयं का आकलन करना चाहिए।

### **आत्महत्या का विचार आए तो क्या करें**

सबसे पहले अपनी समस्या दोस्त या परिजन को बताएं। समस्या का हल ढूंढने की कोशिश करनी चाहिए। परिवारजन और दोस्त ऐसे लोगों की स्थिति जांचकर उसकी हिम्मत बढ़ाएं। मौत किसी भी चीज का समाधान नहीं हो सकता है, हर मुश्किल से पार पाया जा सकता है। आत्महत्या का विचार ज्यादा हावी होने पर मनोचिकित्सक से संपर्क करें। ऐसा करने से समाज के भीतर इस बीमारी से ग्रसित लोगों को सही राह पर लाने में काफी सहायता मिलेगी। इसके अलावा समाज में लोगों के भीतर पनप रही हिंसक प्रवृत्ति को रोकने में भी मदद मिलेगी।

दिल्ली से सटे नोएडा में पिछले कुछ महीनों के भीतर हुई आत्महत्याएं

13 जनवरी 2010 को होशियारपुर गांव में महिला मंजू देवी ने पंखे से लटककर की आत्महत्या। 19 जनवरी सेक्टर 71 में रहने वाले साफ्टवेयर इंजीनियर ने पंखे से लटककर की खुदकुशी। 22 जनवरी चौड़ा गांव में एमबीए छात्र अन्नू चौहान ने पंखे से लटककर जीवन लीला समाप्त की। 22 जनवरी प्रापर्टी डीलर राजू लुईस ने कर्ज न चुका पाने के कारण सेक्टर 32 में मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्महत्या कर ली। चार फरवरी सेक्टर 23 में रहने वाली एमिटी की बीबीए छात्रा ने पंखे से लटककर दी जान। 13 फरवरी सेक्टर 22 में रहने वाली लक्ष्मी देवी नामक महिला ने फांसी लगाकर आत्महत्या की। 15 फरवरी फलैंदा गांव के सेती



नामक युवक ने जंगल में जाकर पेड़ से लटककर की आत्महत्या। 23 फरवरी साफ्टवेयर इंजीनियर की पत्नी पूजा सिंघल ने पंखे से लटककर की आत्महत्या। 27 मार्च सेक्टर 27 में रहने वाले न्यूज़ चैनल के मेकअप मैन सुदीप तुगूर ने पंखे से लटककर आत्महत्या की। 31 मार्च एमिटी के बीटेक के छात्र सुमित ने सेक्टर 82 में पंखे से लटककर दी जान। 1 अप्रैल सेक्टर 18 में रहने वाले प्रमोद यादव ने जहर खाकर जान दी। 1 अप्रैल सेक्टर 8 में रहने वाले संजीव ने पंखे से लटककर दी जान। 2 अप्रैल बरौला गांव में रहने वाले एमबीए छात्र गौरव पालीवाल ने की आत्महत्या। 3 अप्रैल मोरना गांव में जगमोहन ने पंखे से लटककर दी जान। 4 अप्रैल ममूरा गांव में संदीप नामक युवक ने पंखे से लटककर आत्महत्या कर ली। यह सब उदाहरण हैं जो हिंसक प्रकृति की ओर इशारा करते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि घर के बड़े लोगों को इन सब बातों पर नजर रखे और इस प्रकार की बातों को समझकर मनोचिकित्सकों से संपर्क करें।

## हिंसा और राजनीति

समस्या जायज होने के बावजूद बुधवार, 14 मार्च 2007 को पश्चिम बंगाल के नंदीग्राम गांव में दस से अधिक लोग मारे गए जबकि 50 से अधिक घायल हुए। वजह इनके विरोध का तरीका सही नहीं था। पूर्वी मिदनापुर जिले के नंदीग्राम के लोग पिछले कुछ समय से खेती की जमीन लेकर रसायन संयंत्र लगाने का विरोध कर रहे हैं और इसी को लेकर वहां पिछले कुछ दिनों से तनाव था। राजधानी कोलकाता के कोई डेढ़ सौ मिलोमीटर दूर स्थित नंदीग्राम में तनाव को देखते हुए पुलिस की मदद लेनी पड़ी थी। अधिकारियों के अनुसार ऐसा इसलिए किया गया, ताकि नंदीग्राम में प्रस्तावित रसायनिक इकाइयों के लिए भूमि अधिग्रहण का काम पूरा किया जा सके।

### विवाद

नंदीग्राम में विवाद की वजह है, यहां प्रस्तावित रासायनिक इकाई की स्थापना के लिए भूमि आबंटन। राज्य सरकार जहां इस तरह के कारखानों की स्थापना के लिए इस गांव की जमीन के अधिग्रहण का अधिकार संबंधित समूहों को सौंप चुकी है, वहीं स्थानीय लोग इसका विरोध कर रहे थे। स्थानीय लोगों का कहना है कि वे अपनी जमीन पर ऐसी कोई इकाई नहीं चाहते हैं और उन्हें उनकी जमीनें वापस कर दी जाए। इसको लेकर कई मानवाधिकार संगठन और राज्य के विपक्षी दल भी सरकार का विरोध करते रहे थे। लोगों और पुलिस प्रशासन के बीच यहां की जमीन के अधिग्रहण को लेकर पिछले कुछ दिनों से संघर्ष लगातार जारी था। इसी इलाके में इंडोनेशिया की सलेम समूह भी निवेश करने की योजना बना रही थी। इसी तरीके से राजस्थान में भी राजनीति की वजह से आंदोलन ने खूनी रुख अख्तियार कर लिया और कई लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। गूजर अनुसूचित जनजाति का दर्जा

दिए जाने की मांग कर रहे हैं। गूजर अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल हैं लेकिन उनका मानना है कि अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिलने पर वे नौकरियों और शिक्षा में मिलने वाली आरक्षण की सुविधा का बेहतर फायदा उठा पाएंगे।

राजस्थान में खुद को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिए जाने की मांग कर रहे गुर्जर समुदाय के लोगों ने शुक्रवार 23 मई, 2008 से उग्र आंदोलन की शुरुआत कर दी थी।

### गुर्जरों का प्रदर्शन

राज्य के बयाना इलाके में शुक्रवार की सुबह से ही अपनी मांगों को लेकर गुर्जर प्रदर्शनकारी सड़कों पर उतर आए और साथ ही रेल यातायात भी बंद कर दिया। करीब तीन हजार की तादाद में गुर्जर दिल्ली से मुंबई को जोड़ने वाले मुख्य रेलमार्ग पर धरना देकर बैठ गए थे। इसके बाद से रेल अधिकारियों ने इस रूट से रेल यातायात रोक दिया। गौरतलब है कि करीब 30 प्रमुख रेलगाड़ियां इस रेलमार्ग से गुजरती हैं। रेल अधिकारी अब यह तय करने की कोशिश कर रहे थे कि मुंबई की ओर जाने वाले ट्रेनों के लिए क्या रूट निर्धारित किया जाए ताकि बिना किसी हिंसा और नुकसान के लोगों को यात्रा का मौका मिल सके।

इस दौरान पुलिस ने गुर्जर आंदोलनकारियों को रोकने और तितर-बितर करने के लिए आंसूगैस के गोले दागे और लाठीचार्ज किया। गुर्जरों के इस आंदोलन को लेकर पिछले दिनों में राजनीति भी होती रही है। साथ ही अन्य राज्यों के गुर्जर समुदाय के लोगों ने भी राजस्थान के गुर्जरों के आंदोलन को अपना समर्थन दिया था।

इस आंदोलन का असर दिल्ली, यू पी और हरियाणा में भी देखने को मिला था। राजस्थान के गुर्जरों का तर्क है कि अन्य राज्यों की तरह राजस्थान में भी उन्हें अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में शामिल किया जाना चाहिए।

गुरुवार, 31 मई 2007

गुर्जरों को अनुसूचित जनजाति में शामिल किए जाने को लेकर राजस्थान में चल रहे आंदोलन की चिंगारी दिल्ली में भी भड़कती दिखाई दी। गुरुवार को दिल्ली में युवा गुर्जर नेताओं ने राष्ट्रीय राजमार्ग पर चक्का जाम किया और एक घंटे से अधिक समय तक यातायात को ठप्प रखा।

बुधवार, 25 जून 2008

कश्मीर में हिंदुओं के धार्मिक तीर्थ स्थान अमरनाथ मंदिर प्रबंधन बोर्ड को पास की ही वनभूमि देने का विरोध प्रदेश के कुछ नए इलाकों में फैल गया है और बुधवार को पुलिस की गोली से एक और व्यक्ति की मौत हो गई। अमरनाथ मंदिर प्रबंधन बोर्ड के चेयरमैन राज्यपाल होते हैं और उन्होंने ही वन भूमि इस बोर्ड को देने का फैसला किया है। इस फैसले के खिलाफ श्रीनगर में सोमवार से ही प्रदर्शन हो रहे थे।

अमरनाथ श्राइन बोर्ड वो संस्था है जो अमरनाथ गुफा तक होने वाली तीर्थयात्रा का पूरा इंतजाम देखती है। हर साल हजारों की संख्या में हिंदू तीर्थयात्री अमरनाथ की यात्रा करते हैं। ज़मीन देने के फैसले पर सरकार का कहना है कि तीर्थयात्रियों के लिए अस्थाई झोपड़ियों और शौचालय बनाने के लिए जमीन की जरूरत थी, इसलिए ये वनभूमि दी गई है।

सरकार के इस कदम का विरोध सबसे पहले पर्यावरण के क्षेत्र से जुड़े स्थानीय कार्यकर्ताओं ने किया था जिसके बाद कुछ स्थानीय नेता भी इस आंदोलन में शामिल हो गए।

सोमवार, 25 मई 2009

ऑस्ट्रिया की राजधानी विएना के एक गुरुद्वारे में हुए संघर्ष में धर्मगुरु की हत्या के बाद भारत में भी इसका असर दिखा। पंजाब के कई हिस्सों में विरोध-प्रदर्शन हुए। बताया जा रहा है कि विएना में डेरा सच खंड के एक गुरुद्वारे में घुसकर कुछ हथियारबंद लोगों ने एक धर्मगुरु को मार दिया। इस हिंसा में 16 लोग घायल भी हो गए। उल्लेखनीय है कि डेरा सच खंड के अधिकतर अनुयायी दलित हैं। इस घटना के बाद विएना में सिख समुदाय में तनाव व्याप्त हो गया। डेरा सच खंड के अनुयायियों ने राज्य में कई जगहों पर हिंसक प्रदर्शन किए। हजारों की तादाद में प्रदर्शनकारी सड़कों पर उतर आए। हिंसा और प्रदर्शनों से राज्य के जालंधर, होशियारपुर, नवांशहर, गढ़शंकर, लुधियाना, बहराम और फगवाड़ा प्रभावित हुए। फगवाड़ा में दिल्ली-जालंधर रेलमार्ग पर एक रेलगाड़ी के इंजन को तोड़ने के प्रयास किए गए। वहीं जालंधर में रामामंडी इलाके से भी आगजनी और वाहनों को जलाने की खबरें मिली।

## क्या है डेरा सच खंड

डेरा सच खंड पंजाब में दलितों और पिछड़ी जाति के लोगों के सबसे बड़े डेरे के तौर पर माना जाता है। हालांकि इस डेरे के अनुयायी हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के बनारस में भी हैं। पंजाब में दोआबा के क्षेत्र में इस डेरे का खासा प्रभाव है। संत रविदास के अनुयायियों का यह सबसे बड़ा डेरा माना जाता है।

डेरे का पूरा नाम संत सरवणदास डेरा सच खंड - रायपुर बल्लां है और इसके प्रमुख संत निरंजनदास जी हैं। विएना में जिस संत की हत्या हुई, उनका नाम रामानंद जी है और वे इस डेरे के सहायक संत थे। सच खंड के हवाले से मिली जानकारी के मुताबिक संत रामानंद विएना में धर्म प्रचार के लिए गए हुए थे और गुरुद्वारे में इकट्ठा हुए लोगों को संबोधित कर रहे थे जिस वक्त उन पर कुछ हथियार बंद लोगों ने हमला किया।

## विएना की आंच

विएना के गुरुद्वारे में हुए संघर्ष में 16 लोग घायल भी हुए। इस घटना से विएना का छोटा सा सिख समुदाय सकते में पड़ गया। झड़प के समय कोई 300 लोग गुरुद्वारे में मौजूद थे जिनमें महिलाएं और बच्चे भी शामिल थे। पुलिस का कहना है कि लगभग पांच लोग कृपाण लेकर और एक व्यक्ति पिस्तौल लेकर गुरुद्वारे में घुस आया और उन्होंने ग्रंथी पर हमला कर दिया।

वहां मौजूद लोगों ने बीच बचाव किया जिसमें कई लोग घायल हो गए। बहुत से लोग जान बचाने के लिए गुरुद्वारे से भागे। अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि झड़प किस कारण हुई। ये गुरुद्वारा वियना के रुडोल्फशेम जिले में है। ऑस्ट्रिया में सिख समुदाय के कोई तीन हजार लोग रहते हैं।

संत रामानंद विएना में धर्म प्रचार के लिए गए हुए थे और गुरुद्वारे में इकट्ठा हुए लोगों को संबोधित कर रहे थे, उस दौरान उन पर कुछ हथियार बंद लोगों ने हमला किया।

## सोमवार, 04 फरवरी 2008

जब अहमदशाह अब्दाली ने पानीपत की तीसरी लड़ाई जीत ली, तो

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 94

कहते हैं कि महाराष्ट्र में ऐसा कोई परिवार नहीं बचा जिसका एक सदस्य लड़ाई में न मारा गया हो, न जाने कितने लोगों को अफगानिस्तान में गुलाम बनाकर बेच दिया गया। इस लड़ाई के बाद महाराष्ट्र को जो सदमा लगा उससे उपजी हीन भावना से उबरना उसके लिए आसान नहीं रहा। हालांकि यह कहना भी उचित नहीं होगा कि मराठी समाज के सारे ही लोग हीनभावना के शिकार हैं, बल्कि ऐसे लोग हमेशा मुट्ठी भर ही होते हैं लेकिन मुखर होने की वजह से इनका सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव बहुत गहरा होता है।

अब से लगभग चार दशक पहले के मुट्ठी भर मराठियों की इसी हीनभावना का फायदा उठाकर एक नेता ने उन्हें दक्षिण भारतीय लोगों के खिलाफ भड़काया था।

पिछले दिनों मुंबई में उत्तर भारतीय लोगों के साथ हो रही मार-पीट और तोड़फोड़ को समझने के लिए मराठियों के एक वर्ग की मानसिकता को समझना जरूरी है। उत्तर भारतीय लोगों के खिलाफ ये नफरत का वातावरण कई वर्षों से मराठी नौजवानों का एक तबके मंसूबे का कारण है। जिसका फायदा वहां के स्थानीय नेताओं ने उठाया।

महाराष्ट्र को अलग राज्य बनाने का जब आंदोलन छिड़ा था तो उसके नेता थे एस ए डांगे और एस एम जोशी, उन्होंने मराठियों की इस भावना का राजनीतिक फायदा नहीं उठाया। लेकिन उस वक्त भी मराठी मानते थे कि उनकी बदहाली के लिए गैर-मराठी जिम्मेदार हैं, तब उनके गुस्से के निशाने पर गुजराती थे। महाराष्ट्र के गठन के बाद दक्षिण भारतीय लोगों के खिलाफ यह कहते हुए आंदोलन शुरू किया कि वे मराठियों की नौकरियां छीन रहे हैं, इस तरह हिंसा की नींव पड़ी। ऐसा नहीं है कि मराठी समाज के सारे ही लोग हीनभावना का शिकार हों, ऐसे लोग हमेशा मुट्ठी भर ही होते हैं।

हालांकि यह पहली बार नहीं है कि मुंबई में बिहार और उत्तरप्रदेश के लोगों को ऐसी बातें सुनने को मिल रही हैं।

जो मुंबई से थोड़ा बहुत भी वाकिफ है वह जानता है कि यह देश का प्रतिनिधि कॉस्मोपॉलिटन शहर है। ऐसा शहर है जो देश भर के लोगों के सांज्ञापन का प्रतिनिधित्व करता है। मुंबई ऐसा शहर है जो लोगों के जीविकोपार्जन और पेशागत संघर्ष को हिंकारत की नज़र से नहीं देखता। उसे अलग तरह का सम्मान देता है वह देश की वाणिज्यिक

राजधानी है और उसकी जीवनशैली पश्चिमी जीवनशैली के खुलेपन से खासी प्रभावित है। इस शहर में ऐसा कौन सा प्रदेश है जहां के लोग न रह रहे हों और इसे अपना शहर न मानते हों। यह और बात है कि उत्तर भारत के लोगों की संख्या बाकी प्रदेश के लोगों से कुछ ज्यादा है।

लेकिन इस बात से कोई इनकार कर सकता है और मुंबई की कई ऐसी मूलभूत सेवाएं हैं जो इन्हीं उत्तर भारत से आए लोगों के भरोसे चलती हैं।

### **मूलभूत अधिकार**

भारत में जम्मू-कश्मीर में और बस्तर के अबूझमाड़ जैसे सघन आदिवासी इलाकों में देश के दूसरे हिस्सों से आने वाले नागरिकों के लिए नियम कायदे कुछ अलग हैं लेकिन वे फिर भी वैसे नहीं हैं जिसका पाठ महाराष्ट्र के कुछ दल मिलकर पढ़ाना चाहते हैं। भारत के नागरिकों को मिले मूलभूत अधिकारों का हिस्सा है कि वह देश के किसी भी हिस्से में जाएं, वहां रहें, रोजगार तलाश करें और जमीन जायदाद खरीदकर वहां बस जाएं। तो ये कौन लोग हैं जो आजादी के साठ साल बाद और संविधान लागू होने के 58 साल बाद नागरिकों से उनके मूलभूत अधिकार छीनने की धमकी दे रहे हैं? कौन दे रहा है उन्हें यह अधिकार? उन्हें क्या हक है कि वे भारत के संविधान से अलग हटकर बात करें।

### **रविवार, 12 अगस्त, 2007**

पूर्वोत्तर राज्य असम में शनिवार की रात एक बार फिर संदिग्ध चरमपंथियों ने उत्तर भारत के लोगों को निशाना बनाया और चार लोगों की हत्या कर दी है। पुलिस का कहना है कि ताजा घटना के पीछे भी उल्फा और एक अन्य चरमपंथी संगठन का हाथ हो सकता है। प्राप्त जानकारी के अनुसार चरमपंथियों ने कारबी आंगलांग जिले में रंगमहल घाट गांव पर हमला किया और एक महिला और एक छोटे बच्चे समेत चार लोगों की हत्या कर दी। उल्लेखनीय है कि एक दिन पहले यानी शुक्रवार की रात भी चरमपंथियों ने 12 उत्तरभारतीयों की हत्या कर दी थी। इसके साथ ही पिछले सात दिनों में असम में चरमपंथी हमलों में मारे गए लोगों की संख्या 30 हो गई है। इनमें से 26 लोग उत्तर भारतीय थे हैं। अभी तक कारबी आंगलांग जिले में उत्तर भारतीयों पर तीन हमले हो

चुके हैं। वरिष्ठ पुलिस अधिकारी एस के गोगोई के अनुसार चरमपंथी इस इलाके को चुनते हैं क्योंकि इन इलाकों में सुरक्षा बलों की संख्या कम है। कारबी आंगलांग के उपायुक्त एम अंगामुत्तु का कहना है कि जिले से हिंदीभाषी लोगों को हटाकर अन्य सुरक्षित स्थानों पर भेजा जा रहा है क्योंकि सभी लोगों को हमेशा सुरक्षा दे पाना संभव नहीं है।

उल्लेखनीय है कि मुख्यमंत्री तरुण गोगोई ने हिंदीभाषी लोगों को सुरक्षित स्थानों पर भेजने की घोषणा की थी। तरुण गोगोई ने कहा कि इन घटनाओं के पीछे विदेशी शक्तियों का भी हाथ है। यह पूछे जाने पर कि विदेशी हाथ से उनका इशारा किस ओर है तो उन्होंने कहा “मैं तो नाम नहीं लूंगा लेकिन सब जानते हैं कि चरमपंथी भाग कर बांग्लादेश चले जाते हैं। कारबी आंगलांग नगालैंड से सटा हुआ है। एनएससीएन है। खापलांग है। कई लोग जुड़े हैं हिंसा फैलाने में।” स्वतंत्रता दिवस से पहले असम में हिंदीभाषियों पर हमले बढ़ गए हैं और जानकारों का मानना है कि अगले कुछ दिनों में और हमले भी हो सकते हैं। पिछले साल सितंबर में उल्फा ओर सरकार के बीच बातचीत टूट जाने के बाद चरमपंथी हमले तेज हुए हैं। उसके बाद से लेकर अब तक लगभग 150 उत्तर भारतीय मारे गए हैं।

## **गुरुवार, 18 जनवरी 2007**

उल्फा प्रतिबंधित संगठन यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम यानी उल्फा ने हिंदीभाषियों को एक बार फिर असम छोड़ने की धमक दी है। उल्फा ने अपने न्यूज़लैटर, फ्रीडम को विभिन्न समाचार पत्रों के कार्यालयों में भेजा है जिसमें कहा गया है, “हम हिंदी भाषियों से अपील करते हैं कि संघर्ष के इन दिनों में वे असम से दूर रहें।” उल्फा का कहना है कि असम के हिंदीभाषियों से पहले भी अपील की गई थी लेकिन चेतावनियों के बावजूद वे यहां टिके रहे। माना जा रहा है इस तरह पहली बार उल्फा ने हिंदीभाषियों पर हमले को न्यायोचित ठहराने की अपील की है। गौरतलब है कि पिछले दिनों की हिंसा में 70 लोगों को मार दिया गया था, जिसमें अधिकतर हिंदीभाषी थे जो वहां मजदूरी करते थे। दूसरी ओर असम में सुरक्षा बलों ने उल्फा विद्रोहियों के खिलाफ एक बड़ा अभियान शुरू किया है जिसमें हजारों सैनिक भाग ले रहे हैं। इस अभियान के तहत अनेक पहाड़ी इलाकों में कार्रवाई की जा रही है जिनमें अरुणाचल प्रदेश



से लगने वाला इलाका भी शामिल है।

असम में इस हिंसा को लगभग एक दशक में सबसे भीषण कहा जा रहा है और इसमें जो लोग उत्फा विद्रोहियों का निशाना बने उनमें से ज्यादातर ईट के भट्टों में काम करते थे।

### **गुरुवार, जुलाई 30, 2009**

पिछले 12 साल से नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल आफ नगालिम के दो गुटों ने भारतीय सेनाओं के साथ संघर्षविराम बनाए रखा है और सरकार के साथ वार्ता कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से बातचीत भारत के संविधान के दायरे में ही हो रही है और एनएससीएन ने इस बारे में यूरोप के संविधान विशेषज्ञों से मदद ली है। उनका कहना था, “एनएससीएन ने भारतीय संविधान को समझने की पर्याप्त कोशिश की है और यह देखने की कोशिश की है कि संविधान किस तरह से उनकी आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है। उनका कहना है कि वे संविधान को बेहतर समझते हैं और हमसे फिर बात करेंगे, उन्होंने अपने भी कुछ प्रस्ताव दिए हैं जिन पर भारत सरकार कुछ महीनों में अपनी प्रतिक्रिया देगी। जो कुछ भी तय होगा वह भारतीय संविधान के दायरे में ही होगा और इस पर बहस नहीं हो सकती है। मेरा मानना है कि अलगाववादी गुट भी अब ये बात समझते हैं।” उनका कहना था कि संविधान में पर्याप्त लचीलापन है जो राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं पर नगा गुटों की भावनाओं का ख्याल रख सके।

जब उनसे पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों में चल रहे आंदोलनों और अलगाववादी संघर्ष के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि इन सभी राज्यों के गुटों के साथ एक-साथ समग्र बातचीत नहीं हो सकती क्योंकि इनका इतिहास, मांगे अलग-अलग हैं। उनका कहना था कि कहीं स्वायत्तता की मांग है तो कहीं स्वतंत्रता की।

गृह सचिव जी. के. पिल्लई का कहना था कि मणिपुर के मामले में वर्ष 1969 तक तो कोई विद्रोह था ही नहीं और अब मैती गुट के साथ वार्ता की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा रहा है। उनका मानना था कि मणिपुर में लोग शांति के लिए उत्सुक हैं और जानते हैं कि हिंसा से कुछ हासिल नहीं होने वाला है।

यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम के बारे में पूछे जाने पर गृह

सचिव का कहना था कि असम भारत के विचार से बहुत ही महत्वपूर्ण राज्य है और पूर्वोत्तर में सबसे अहम राज्य है। उनका कहना था कि असम में आर्थिक विकास और शांति दोनों ही जरूरी है और ये देखा गया है कि जब बातचीत शुरू हो जाती है तो हिंसा अपने आप घट जाती है क्योंकि कोई भी बातचीत और लड़ाई एक साथ नहीं करता है।

## **शनिवार, 28 जुलाई, 2007**

चरमपंथी संगठन हिज्बुल मुजाहिदीन ने सभी गैर कश्मीरी मजदूरों और दस्तकारों को एक हफ्ते के भीतर जम्मू-कश्मीर से बाहर निकलने को कहा।

इससे पहले भारत प्रशासित कश्मीर के एक प्रमुख अलगाववादी नेता सैयद अली शाह गिलानी ने भी कहा था कि गैर कश्मीरी मजदूरों को राज्य छोड़कर चले जाना चाहिए।

## **सस्ते मजदूर**

उल्लेखनीय है कि कश्मीर में बिहार, उत्तरप्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों से हजारों लोग हैं जो बढ़ई, राजमिस्त्री, नाई का काम करते हैं और बड़ी संख्या में लोग मजदूरी करते हैं। चूंकि कश्मीर के स्थानीय निवासी सरकारी और दूसरी नौकरियों में रूचि लेने लगे हैं इसलिए इस तरह के कामों के लिए दूसरे राज्यों के लोगों की जरूरत पड़ने लगी है। यहां तक कि ये लोग सीमा के संवेदनशील इलाकों में भी काम कर रहे हैं।

एक ओर तो कश्मीरियों को सस्ते मजदूर भी चाहिए लेकिन दूसरी ओर उनके भीतर यह डर भी समा रहा है कि इससे कहीं घाटी की जनसंख्या की तस्वीर न बदल जाए। इसी तरह की आशंका जताते हुए रेज़िडेंसी रोड के एक दुकानदार रफी अहमद कहते हैं, “उनकी संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और एक दिन ऐसा आएगा जब उनकी संख्या हम कश्मीरियों से अधिक हो जाएगी।”

केंद्रीय मंत्रिमंडल के उच्च शिक्षा संस्थानों में आरक्षण को मंजूरी दिए जाने के फैसले को मेडिकल छात्रों ने ‘दुर्भाग्यपूर्ण’ बताया और इसके विरोध में दिल्ली के जंतर-मंतर पर धरना दिया। मेडिकल छात्रों के धरने प्रदर्शन के दौरान के लिए पुलिस ने सुरक्षा के कड़े इंतजाम किए थे और उन्हें तितर-बितर करने के लिए आंसू गैस के गोले दागे गए। गौरतलब

है कि सोमवार को मंत्रिमंडल ने उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण से संबंधित विधेयक के मसौदे को मंजूरी दे दी थी। यह विधेयक संसद के समक्ष इसी सत्र में लाया जाना था। इस विधेयक के तहत आई आई टी और आई आई एम जैसे उच्च शिक्षा संस्थानों और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में आरक्षण का प्रावधान होगा।

प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में हुई इस बैठक के बाद सूचना और प्रसारण मंत्री प्रियरंजन दासमुंशी ने इसके बारे में जानकारी दी। ये माना जा रहा है कि इसमें अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत तक के आरक्षण का प्रावधान हो सकता है। उल्लेखनीय है कि इस मामले में वीरप्पा मोइली समिति अपनी अंतरिम रिपोर्ट पहले ही पेश कर चुकी है। कुछ समय पहले जब मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह ने केंद्र सरकार की सहायता से चलने वाले उच्च शिक्षा संस्थानों में पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण की बात कही थी तो काफी हंगामा हुआ था।

### **गुरुवार, 19 फरवरी, 2009**

तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई में स्थित हाईकोर्ट परिसर में वकीलों और पुलिस के बीच हिंसक झड़पें हुई हैं जिनमें कई लोग घायल हुए।

सुब्रमण्यम स्वामी पर मंगलवार को उस समय वकीलों ने हमला कर दिया था जब वो हाई कोर्ट में किसी मामले की पैरवी कर रहे थे।

श्रीलंका में तमिल विद्रोहियों के खिलाफ जारी लड़ाई के मुद्दे पर प्रदर्शन कर रहे वकील सुब्रमण्यम स्वामी के उस बयान से नाराज़ थे जिसमें उन्होंने एलटीटीई का विरोध किया था। इस बीच सुप्रीम कोर्ट ने भी मद्रास हाई कोर्ट के वकीलों के व्यवहार पर नाराज़गी जताई। मुख्य न्यायाधीश के. जी. बालकृष्णन की अध्यक्षता वाली खंडपीठ ने गुरुवार को मद्रास बार एसोसिएशन और बार काउंसिल ऑफ़ इंडिया को नोटिस जारी किया।

## लोकतंत्र के आड़ने में हिंसा

भारत में स्वतंत्रता के बाद 60 साल में राष्ट्रीय स्तर पर लोकतंत्र खासा मज़बूत हुआ है, लेकिन गांव-तहसील स्तर पर अलोकतांत्रिक व्यवहार और हिंसा भी नज़र आती है। इन हिंसक घटनाओं में कुछ का सरोकार सीधे-सीधे विकास से जुड़ा है तो कुछ राजनीति से। भारत एक बहुत ही असाधारण लोकतंत्र है जिसकी कुछ बहुत ही मज़बूत लोकतांत्रिक विशेषताएं हैं और कुछ बहुत ही अलोकतांत्रिक विशेषताएं भी हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ-साथ तमाम तरह की मुश्किलें ही आज़ाद भारत को एक असाधारण लोकतंत्र बनाती हैं।

### उपलब्धियां

उपलब्धियां की बात करें तो यही लोकतांत्रिक ढांचा है जिसने 'सेफ्टी वॉल्व' का काम किया है और कभी-कभी असल मुद्दे भी सुलझाए हैं। नहीं तो भारत जैसा बड़ा और इतनी असमानताओं वाला देश भला अविभाजित कैसे रह सकता था? भारत में लोकतांत्रिक परंपरा दूर-दूर तक फैल रही है और उसकी जड़ें और गहरी हो रही हैं। देखा गया है कि चुनावों में संपन्न वर्ग के मुकाबले, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग ज्यादा बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं।

दूसरी ओर विकसित देशों में उपेक्षित वर्ग मतदान में ज्यादा संख्या में भाग नहीं लेता क्योंकि उसे चुनाव में भाग लेने का कोई खास मकसद नज़र नहीं आता। अब सवाल उठता है कि क्या अपनी स्थिति सुधारने के लिए सामाजिक या आर्थिक रूप से पिछड़ गए वर्ग की लोकतांत्रिक व्यवस्था में पूरी आस्था है? ये आस्था का सवाल कम है और असल बात ये है वे इस व्यवस्था को जरूरी मानते हैं लेकिन काफी नहीं। उन्हें लगता है कि इससे उनकी मदद होती है और इसका इस्तेमाल करना चाहिए, फिर चाहे ये पर्याप्त न हो। आज़ादी के बाद के 20-25 साल में मज़दूरों

और किसानों के संघर्ष, यानी आर्थिक मुद्दों पर आंदोलन जरूर हुए थे। लेकिन इसके बाद सांस्कृतिक मुद्दों पर असंतोष, आर्थिक असंतोष से ज्यादा देखा गया है। विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास के लिहाज़ से फर्क तो रहा है लेकिन जनांदोलन सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दों पर रहे हैं। इसका ये मतलब नहीं है कि आर्थिक असंतोष रहा ही नहीं, लेकिन अब आर्थिक मुद्दों पर लोगों को एकजुट करना खासा मुश्किल हो गया है।

### **अहम पड़ाव**

भारतीय लोकतंत्र की असफलताओं की बात करें तो पिछले 15 साल में - 1990 के दशक से लेकर अब तक लोकतांत्रिक व्यवस्था में अनिश्चितता बढ़ गई है। यदि लोकतांत्रिक राजनीति के पांच मुख्य पड़ावों की बात करें तो पहला, आपातकाल का लागू किया जाना और उतना ही महत्वपूर्ण, फिर उसका दोहराया न जाना था। दूसरा था मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करना यानी पिछड़ों को और अधिकार दिलाने का प्रयास। आज़ाद भारत के लोकतांत्रिक सफर का तीसरा मुख्य पड़ाव था, बाबरी मस्जिद विध्वंस और चौथा था वर्ष 1998 के पोखरण धमाके जिनसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को बहुत सदमा पहुंचता। पांचवां मुख्य पड़ाव है वर्ष 2002 में गुजरात में गोधरा की घटना।

ये सब मुख्य पड़ाव हैं और इनमें हिंसा का पहलू भी रहा है। शायद मंडल आयोग की सिफारिशों को छोड़कर बाकी घटनाएं लोकतंत्र के लिए नकारात्मक हैं। ये सब घटनाएं इस बात का भी संकेत हैं कि भारत के उच्च वर्ग का किरदार किस तरह बदल रहा है। भारतीय लोकतंत्र असल में 'आप पर कौन शासन करेगा,' इसकी प्रतिस्पर्धा है। ये उस लिहाज़ से लोगों के पास काफी विकल्प हैं जो एक सकारात्मक बात है।

संसद में 28 अलग-अलग राजनीति दल हैं और पार्टियों की नीतियों में फर्क देखें तो वह भी खासा है। अमरीका या ब्रिटेन में तो लोगों के पास विकल्प सीमित है।

### **सक्रिय ताकतें**

आज के भारतीय लोकतंत्र और भविष्य के भारत की रचना में कौन सी ताकतों की मुख्य भूमिका है? इस संदर्भ में सबसे पहली ताकत है अनिश्चित और धीमी गति से लेकिन लगातार बढ़ रहा हिंदुत्व जिसका

प्रभाव केवल चुनावों में ही नहीं, बल्कि सामाजिक रिश्तों पर भी दिख रहा है। दूसरी बड़ी ताकत है पिछड़े वर्ग का अपने अधिकारों के लिए दबाव बनाना। तीसरी ताकत है दलितों का अपने अधिकारों और सत्ता में भागीदारी के लिए सक्रिय होना। चौथा प्रभाव है मुसलमानों का पारंपरिक नेतृत्व के साथ असंतुष्ट होना, महिलाओं के अधिकार और समुदाय के सदस्यों को शिक्षित करने और रोज़गार दिलाने का प्रश्न। इसके साथ ही यह समुदाय इस अहम सवाल का सामना कर रहा है कि 'हम (मुसलमान) कहां जा रहे हैं?' अन्य मुख्य पहलू हैं भारतीय राजनीतिक का क्षेत्रीकरण और भारत के तथाकथित मध्यम वर्ग का आगे बढ़ना - तथाकथित इसलिए क्योंकि ये मध्य वर्ग देश का लगभग 15-20 प्रतिशत उच्च और प्रभावशाली वर्ग है। इन प्रभावों का मिश्रण और एक-दूसरे पर हावी होना वह पेचीदा तस्वीर पैदा करता है जिससे वर्तमान और भविष्य के भारत की रचना होगी।

### मजबूत जड़ें क्यों

भारत में लोकतंत्र की जड़ें पड़ोसी देशों के मुकाबले में मजबूत क्यों हैं? इसका कोई एक मुख्य कारण नहीं है, इसके कई कारण हैं। आजादी के बाद के 20-25 साल में राष्ट्रीय राजनीति पर एक प्रमुख राजनीतिक दल का प्रभुत्व रहा। कई मायने में वो आजादी से पहले ही इस 'रोल' के लिए तैयार थी और प्रशासकीय भूमिका निभा रहा था। ये चाहे सतही तौर पर उस समय की भारतीय राजनीति का अलोकतांत्रिक पहलू प्रतीत हो, लेकिन उस समय उसमें कई धड़े थे जो अलग-अलग विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते थे।

जब उस दल का प्रभुत्व खत्म हुआ तो पहले ये राज्यों में हुआ। वहां आपस में मुकाबला करती काफी हद तक स्थिर, दो-पार्टी या तीन-पार्टियों की व्यवस्था कायम हुई इसके बाद ही राष्ट्रीय स्तर पर कई पार्टियां सामने आईं। राष्ट्रीय स्तर पर दो ऐसी घटनाएं हुई जिन्होंने भारत की एकता को बल दिया - भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन और राष्ट्रीय चुनावों को प्रांतीय चुनावों से अलग करना। भाषा के आधार पर राज्यों के बनने से शायद उर्दू को छोड़कर बाकी सभी भाषाओं का विकास हुआ और राज्यों में लोगों की पहचान मजबूत हुई। अगर भाषा के आधार पर राज्य न बनते तो काफी मुश्किलें हो सकती थीं।

इसके अलावा, राष्ट्रीय चुनावों को राज्यों के चुनावों से अलग कर दिए जाने से क्षेत्रीय पार्टियों को बल मिला और राज्यों के लोगों को अपने मुद्दे उठाना और उनकी ओर ध्यान आकर्षित करना आसान हो गया। इससे आजाद भारत में लोकतंत्र मजबूत हुआ।

## दर्द भरी दास्तान

आइए अब उस कहानी का जिक्र करते हैं जहां बाशिंदे कभी खुद को जन्नत का निवासी कह कर फूले नहीं समाते थे। लेकिन हालात ने करवट बदली। कश्मीर घाटी में हिंसक वारदातों के दौर ने कुछ समय के लिए सांप्रदायिक रंग अख्तियार कर लिया। नतीजा लाखों की संख्या में कश्मीरी पंडितों को अपनी जान बचाने की खातिर कश्मीर घाटी छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। इस पूरी प्रक्रिया में उन्होंने अपना सब कुछ गवां दिया। उन्हें अपने ही देश में शरणार्थी जैसी जिंदगी जीने को मजबूर होना पड़ा।

आइए आपकी मुलाकात कराते हैं एक ऐसी महिला से जिसने घाटी में भड़के हिंसा के उस दौर को अपनी आंखों से देखा है। “अपनी जमीन छोड़े आज 15 साल हो गए हैं पर भागकर न आते तो क्या जिंदा रह पाते। फिर भी अंतिम इच्छा तो यही है कि मरने से पहले एक बार कश्मीर देख लूं तभी आत्मा को शांति मिलेगी,” 1990 से दिल्ली में शरणार्थी की जिंदगी गुजार रहीं अद्वैतवादिनी कौल का दर्द साफ झलकता है। वे कश्मीर से आने वाली अकेली महिला नहीं हैं। एक अन्य कश्मीरी विस्थापित उत्पल कौल बताते हैं, “घाटी में 1989 कश्मीरी पंडितों पर हिंसक वारदातों का बढ़ना और ऐसी घटनाओं में तकरीबन दो हजार कश्मीरी पंडितों का मारा जाना ही आज दिल्ली में लाखों की तादाद में रह रहे कश्मीरी शरणार्थियों की बदहाल जिंदगी का कारण है।” उत्पल बताते हैं, “हम हर साल अपने शहीद परिजनों को याद करने के लिए 14 सितंबर को शहीद दिवस मनाते हैं ताकि भारत की सरकार और विश्व समुदाय हमारे दर्द को जान सके। हालांकि पिछले 15 सालों से केंद्र और राज्य, दोनों ने ही हमारी उपेक्षा की है।” कश्मीर के इस समुदाय के लोगों ने कई बार दिल्ली में राजघाट पर श्रद्धांजलि सभा आयोजित की। साथ ही जंतर-मंतर पर भी प्रदर्शन किया। ऐसे ही कार्यक्रमों का आयोजन जम्मू में भी किया जाता है।

## वक्त की मार

गौरतलब है कि 1989 में कश्मीर में चरमपंथियों ने कश्मीरी पंडितों के नेता टिक्कालाल टपलू की हत्या कर दी थी। उसके बाद कई हिंसक वारदातों में बड़े पैमाने पर कश्मीरी पंडितों की हत्या कर दी गई थी। जिसके चलते तकरीबन पांच लाख कश्मीरी पंडित विस्थापित जीवन जी रहे हैं। इन विस्थापितों की मानें तो दिल्ली में इनकी संख्या दो से ढाई लाख के बीच है जबकि दिल्ली के सरकारी रजिस्ट्रों में केवल 20 हजार विस्थापित ही पंजीकृत हैं। जम्मू में यह तादाद 55 हजार के करीब है।

एक अन्य शरणार्थी कहते हैं, “हम अपना ही पता नहीं जानते। कब तक तंबुओं में गुजर होगा। सरकार से कोई राहत या सहायता भी अभी तक नहीं मिल पाई अपने ही देश में हमारी इस हालत से ज्यादा दुखद और क्या हो सकता है।” दिल्ली में कश्मीर समिति के अध्यक्ष सुनील शकधर बताते हैं, “वर्ष 2003 में हमने दिल्ली में रह रहे 30 हजार कश्मीरियों के पंजीकरण की मांग तत्कालीन रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडिस के सामने रखी थी पर उस पर अब तक कोई कार्रवाई नहीं की गई है।” “इस सूची को तत्कालीन गृह मंत्री शिवराज पाटिल ने कश्मीर सरकार को जांच के लिए दिया है पर जब हमारा वहां कुछ बचा ही नहीं तो जांच कैसे होगी। घर जला दिए या फिर लूट लिए गए हैं। राज्य सरकार की मंशा हमारी मदद करने की कतई नहीं है।”

## मांग

विस्थापित लोग अपने घर जाना तो चाहते हैं पर जाने का हौसला खो चुके हैं। उत्पल कौल कहते हैं, “हमारी स्थिति के लिए केंद्र की पिछले 15 सालों की सरकारें जिम्मेदार हैं। पहले शांति बहाल हो, पाकिस्तान और आतंकवादी संगठनों को समझाया जाए, उसके बाद ही लौटने का मनोबल समेट पाएंगे।” सुनील बताते हैं, “सरकार को हमने एक मैप सुझाया है। झेलम के उत्तर-पूर्व में हम कश्मीरी अल्पसंख्यकों को बसाया जाए। हम पृथक कश्मीर नहीं मांग रहे, केंद्र शासित क्षेत्र मांग रहे हैं ताकि सुरक्षित रहे सकें।”

किरण कौल के ससुर पिछले साल ही गुजर गए। मरने से पहले वो अपने घर लौटना चाहते थे पर उनकी आखिरी इच्छा पूरी न हो सकी और



वो चल बसे। किरण की आंखों में आंसू हैं और दिल में घर से जुदा होकर बेनामी जिंदगी जीने का दर्द। इसी दर्द का किस्सा बयान करते इनके शहीद दिवस का पंद्रहवां साल भी पूरा हो गया। केंद्र और राज्य की सरकारों को दिए जा चुके हजारों ज्ञापनों और इस तरह के प्रदर्शनों के सहारे इन्हें अपनी समस्याओं का हल निकलने की आस है।

जहां एक ओर मेज के आमने-सामने बैठकर भी कश्मीर समस्या का हल अब तक नहीं निकल पाया है, वहां इन कश्मीरी विस्थापितों को कब न्याय मिलेगा, यह कह पाना अभी असंभव ही है। खास कर तब, जबकि विस्थापित अभी भी कश्मीर मसले पर बातचीत के एजेंडे तक में नहीं है। और न ही इनकी बातचीत में कोई हिस्सेदारी है।

बारह वर्षीय सुदेश को ये समझ में नहीं आ रहा था कि वह जिंदा बचने पर खुद को खुशकिस्मत समझे या बदकिस्मत, क्योंकि लोग तो मौत के मुंह से उसके बचने को उसकी खुशकिस्मती कह रहे थे लेकिन वो तो यही सोच रही थी कि जब उसके पूरे खानदान को मौत के घाट उतार दिया गया तो ऐसे में वह बदकिस्मत नहीं तो और क्या है।

सुदेश 19 अप्रैल 1998 की रात को ऊधमपुर जिले के प्राणकोट में मारे गए 35 लोगों के परिवार का हिस्सा थी लेकिन कुछ ही मिनटों में वह सिर्फ अकेली ही रह गई थी। जम्मू कश्मीर में ऐसे सैकड़ों हिंसक वारदातें हुईं, जिसकी वजह से हजारों की संख्या में बच्चे अनाथ हो गए। आंकड़ों की बात करें तो जम्मू कश्मीर की कुल आबादी का करीब 38 प्रतिशत बच्चे हैं और उनमें से करीब छह प्रतिशत अनाथ हो चुके हैं।

## अनिश्चित भविष्य

इन बच्चों के सामने अपना वजूद बनाए रखने की समस्या है इसलिए अपने भविष्य के बारे में कुछ अच्छा सोचना इनके लिए एक असंभव सपने जैसा है। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष यानी यूनिसेफ के एक अध्ययन के अनुसार ये अनाथ बच्चे ज्यादातर ऐसे लोगों के हैं जो सुरक्षा बलों और चरमपंथियों के बीच गोलीबारी का शिकार हुए हैं। अनेक घटनाएं ऐसी भी होती हैं जिनमें सुरक्षा बलों या चरमपंथियों के हाथों उनके सिर से माता-पिता का साया उठ जाता है। एक गैरसरकारी संगठन जम्मू-कश्मीर यतीम ट्रस्ट, यतीमों में भरोसा बहाल करने के प्रयासों में लगा हुआ है। एक अध्ययन के मुताबिक आतंकवादी गतिविधियों की

वजह से यतीम बच्चों की संख्या 15 हजार से भी ज्यादा हो गई है। इनमें यतीम बच्चों की सबसे ज्यादा संख्या कुपवाड़ा जिले में है।

यतीम ट्रस्ट के हॉस्टल में रह रहे बच्चों पर नजर डालें तो उनकी आंखों में नजर आती है, दहशत और शायद ये उम्मीद भी कभी उनके दिन भी सुधरेंगे।

### अनिश्चित सहायता

कुछ बच्चों को तो किसी गैरसरकारी संगठन या सरकारी सहायता का सहारा मिल जाता है लेकिन अनेक बच्चे ऐसे भी हैं जिन्हें किसी का सहारा नहीं मिल पाता और एक सुखद भविष्य की उम्मीद करना तो दूर उनके लिए अपनी जिंदगी जीना ही दूभर नज़र आता है। एक गंभीर बात ये है कि हिंसक घटनाओं का असर बच्चों की मनोदशा पर बहुत गहरे रूप में पड़ रहा है जिससे उनकी पूरी सोच ही बदल रही है। श्रीनगर के गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज के एक अध्ययन के अनुसार बच्चों का मानसिक संतुलन बिगड़ने की घटनाएं भी सामने आ रही हैं। इस अध्ययन के अनुसार कॉलेज के मानसिक रोग विभाग में 1990 में करीब 1800 मरीज दर्ज थे वहीं 1994 में ये संख्या बढ़कर बीस हजार से भी ऊपर हो गई। विशेषज्ञ कहते हैं कि बच्चे हिंसक घटनाएं देखते हैं या ऐसी घटनाएं जिनमें उनके परिवार के सदस्य मारे जाते हैं तो उनमें दहशत बैठ जाती है जिससे उनकी मानसिक स्थिति ही बदल जाती है। ऐसे में वे कोई कृत्रिम सहारा तलाश करने लगते हैं और अक्सर नशीली दवाओं के भी शिकार हो जाते हैं।

कश्मीरी बच्चों में एक और चीज़ जो देखने को मिल रही है वो ये कि वे चोर सिपाही का खेल नहीं खेलते बल्कि चरमपंथी सैनिक का खेल खेलना पसंद करते हैं। नकली बम और हथियार उनके खिलौने हैं ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्हें पिकनिक करने का मौका नहीं मिलता, स्कूल का माहौल नहीं मिलता, उन्हें मिलती है तो दहशत, असुरक्षा और भविष्य की अनिश्चितता। विशेषज्ञ कहते हैं कि ये एक बहुत गंभीर समस्या है कश्मीर मसले का समाधान तो जब निकलेगा तब निकलेगा लेकिन उससे पहले एक नई पीढ़ी को भटकने से बचाना होगा। एक ऐसी पीढ़ी जो कश्मीर के भविष्य का आधार है लेकिन हालात ऐसे हैं कि उसे अपनी राह ही मालूम नहीं है और इसके लिए ये पीढ़ी खुद नहीं कोई और ही जिम्मेदार है।

## हिंसा बनाम सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन

आजादी से पहले की सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि दलित समाज के लोगों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। इसके बाद अंग्रेजों के शासनकाल में स्थितियां कुछ बदलीं और एक मुक्त शिक्षा व्यवस्था लागू हुई। इससे कुछ लोगों को लाभ मिला था। आजादी के बाद इस बात को स्वीकार किया गया और इस दिशा में नीति बनाने की जरूरत भी महसूस की गई। दो तरह की शिक्षा नीति बनाई गई। एक तो इस बात पर आधारित थी कि इतिहास में जो वर्ग शिक्षा से वंचित रहे हैं, उन्हें आरक्षण के माध्यम से मुख्यधारा में आने का अवसर दिया जाए। इसे उनकी जनसंख्या के आधार पर तय किया गया। दूसरी तरह की नीति के तहत गरीब और पीछे छूटे हुए लोगों के लिए छात्रवृत्ति, किताबें और अन्य रूपों में आर्थिक मदद जैसी व्यवस्था की गई। यह भी देखा गया कि कई बच्चे प्राथमिक शिक्षा के बाद आर्थिक चुनौतियों के कारण शिक्षा से अलग होते जा रहे हैं और माध्यमिक और उच्च शिक्षा से वंचित हो रहे हैं। इसके लिए छात्रावासों की और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई। कोई भी राजनीतिक दल हो, सभी ने दलितों की शिक्षा को महत्व दिया है।

### चिंता

इस तरह के प्रयासों की वजह से हम पाते हैं कि शिक्षा का ग्राफ तेजी से ऊपर गया है पर जनसंख्या के अनुपात से देखें तो अभी भी दलितों का साक्षरता प्रतिशत औरों की अपेक्षा कम है। ऐसा ही उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले छात्रों में भी देखने को मिलता है। वहां प्रवेश दर 10 प्रतिशत है पर अनुसूचित जातियों के लिए पांच प्रतिशत ही देखने को मिल रहा है। इसकी एक वजह नीतियों के लागू होने को लेकर भी है पर

यह केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं है बल्कि सभी क्षेत्रों में नीतियों के लागू होने को लेकर कुछ चुनौतियां और कुछ खामियां हैं, बल्कि शिक्षा को बाकी नीतियों की तुलना में देखें तो यहां लागू करने की समस्या कुछ कम है। आजादी के बाद शिक्षा में आरक्षण की नीति के कारण उच्च शिक्षा में भी देखें तो दलितों के वहां पहुंचने में कुछ तो प्रगति हुई है पर फिर भी इस बात से मैं सहमत हूं कि कई तरह की सुविधाओं के होने के बावजूद आईआईटी और आईआईएम या उच्च शिक्षा में उनका प्रतिनिधित्व उतना नहीं है जितना कि होना चाहिए था। इसकी वजह गरीबी, सामाजिक विभेद, आर्थिक चुनौतियां और घर का माहौल भी है। इसकी वजह से और वर्गों की तुलना में इस वर्ग से एक छोटा सा तबका ही उच्च शिक्षा में जा पाता है। उच्च वर्गों से ज्यादा तादाद इसलिए है क्योंकि उन्हें सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ा इसकी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है जिसका उन्हें लाभ मिलता आया है।

### सुधार की दरकार

शिक्षा नीति को और प्रभावी बनाने के लिए कोठारी आयोग की सिफारिशों को लागू किया जाए। सामान्य शिक्षा की व्यवस्था लागू हो। गुणवत्ता के स्तर पर सभी को एक जैसी शिक्षा उपलब्ध कराई जाए। कोठारी आयोग ने इस पर काफी बल दिया था। आप देखें कि केंद्रीय कर्मचारियों के बच्चों के लिए केंद्रीय विद्यालय हैं। जो सैनिकों के बच्चों के लिए सैनिक स्कूल हैं, गांव में जो मेरिट वाले बच्चे हैं उनके लिए नवोदय स्कूल हैं और सामान्य बच्चों के लिए नगर निगम के स्कूल हैं। प्राइवेट की तो बात ही नहीं कर सकते, उनमें अंतर्राष्ट्रीय मानकों तक के आधार पर पढ़ाई हो रही है।

इससे एक तरह की असमानता हम लोगों ने ही पैदा कर दी है। समाज का एक विशेष आर्थिक पहुंच वाला व्यक्ति ही अपने बच्चों को यह शिक्षा दे पा रहा है और बाकी के लिए सरकारी पाठशालाएं हैं। हम अच्छे स्कूलों को खत्म न करें पर आम लोगों के लिए उपलब्ध शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक से लेकर सामग्री तक सुधार तो लाएं ताकि गरीब तबका और दलित समाज के बच्चे औरों के सामने खड़े तो हो सकें, उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुधारने की जरूरत भी है और सरकार को इसका अहसास भी है। ऐतिहासिक कारणों से पिछड़े वर्ग जैसे आदिवासी, दलित,

महिलाएं, अल्पसंख्यक और फिर गरीब व्यक्ति, इन सभी को शिक्षा में समान अधिकार दिए जाने की जरूरत है। जिन दलित की स्थिति सुधरी है उन्हें भी शिक्षा में समान अधिकार तो मिलने चाहिए पर आर्थिक सहूलियतें उन्हें ही देनी चाहिए जो कि गरीब हैं।

### **मूल्य आधारित शिक्षा**

एक बात जो सबसे ज्यादा जरूरी है, वह है मूल्य आधारित शिक्षा की। मैं देख रहा हूं कि औपचारिक शिक्षा तो छात्रों को मिल जाती है पर नैतिक और सामाजिक शिक्षा नहीं मिल पा रही है। आरक्षण और सांप्रदायिकता जैसे मुद्दों को वैज्ञानिक तरीके से देखने की जरूरत होती है पर वो नहीं हो पा रहा है। इन मुद्दों पर होने वाली प्रतिक्रिया अक्सर विपरीत होती है। प्रत्येक विद्यार्थी चाहे किसी भी विषय का हो, उसे यह मालूम होना चाहिए कि हमारे समाज की मूलभूत समस्याएं क्या हैं। गरीबी, लिंग आधारित विभेद, जाति विभेद, शोषण और बहिष्कार जैसी समस्याओं का उन्हें एहसास होना चाहिए। अगर सामाजिक व्यवस्था की इन सच्चाइयों का अहसास हम उन्हें करा देते हैं तो इन समस्याओं की ओर देखने का या उन्हें, नजरअंदाज करने के नजरिए में बदलाव आएगा। वैचारिक मतभेद हो सकते हैं पर इन पर वे सकारात्मक रूप से सोच सकेंगे। समस्या तो यह है कि आज के शिक्षितों में से कई लोगों को समाज और देश की समस्याओं की समझ ही नहीं है। हम देखते हैं कि आज भी समाज के शिक्षित वर्ग में समाज और देश की समस्याओं को समझने की सकारात्मक दृष्टि का अभाव है। शिक्षा के समान अवसर, आर्थिक सुरक्षा, मूल्य आधारित शिक्षा, सामाजिक, सांप्रदायिक और लिंग विभेद जैसी समस्याओं से अवगत कराने वाली शिक्षा-प्रणाली को लागू करने से देश में न केवल शिक्षा के स्तर में सुधार आएगा बल्कि साक्षरता की दर भी बढ़ेगी।

### **दलित आंदोलन का स्वरूप**

आज के दौर में दलित आंदोलन की जो दिशा होनी चाहिए थी वो तो नहीं है लेकिन आंदोलन चल रहा है जितना दम-खम होना चाहिए था, जो उपलब्धियां होनी चाहिए थी, वो भी नहीं है। डाक्टर अंबेडकर की जो मुख्य लड़ाई थी वो वर्ण व्यवस्था के खिलाफ थी। वो चाहते थे कि इस

देश में इंसान रहें, जातियां न रहें। हम प्रयास कर रहे हैं और अंबेडकर जी की बात को आगे लेकर चल रहे हैं, मायावती जी, पासवान जी और आरपीआई वाले भी अपने-अपने तरीके से दलित आंदोलन को आगे बढ़ा रहे हैं। लेकिन अंबेडकर जी की जो मूल लड़ाई थी या जो उनकी मुख्य विचारधारा थी, बाकी के लोग उसमें शामिल होने से कतराते हैं। राजनीतिक लड़ाई ये लोग जरूर लड़ रहे हैं और यह जरूरी भी है। लेकिन विधानसभा हो या संसद हो, ये लोग दलितों के हित में आवाज़ नहीं उठाते हैं। उदाहरण के तौर पर बहुजन समाज पार्टी ने दलितों के हित के लिए सीधे तौर पर कोई आंदोलन नहीं किया। दलितों के उत्थान के लिए जो पैसा आबंटित होता है उसे दूसरे विभागों को खर्च करने के लिए दे दिया जाता है। इस पर कोई आंदोलन नहीं है। उत्तर प्रदेश में दलित बच्चों को छात्रवृत्ति नहीं मिल रही है, उस पर बसपा का कोई आंदोलन नहीं है। होना तो यह चाहिए कि विपक्ष में रहकर आप आंदोलन करें और सत्ता में आए तो उन मांगों के लिए कानून बनाए पर इससे इतर बसपा ने वोट और नोट के लिए ही राजनीति की है। निजीकरण, भूमंडलीकरण जैसे मुद्दों पर निजी क्षेत्र में आरक्षण के सवाल पर दलित नेता बिखरे हुए हैं और कोई साथ नहीं आ रहा है, न सवाल खड़े कर रहा है।

## कारण

कुछ तो इस देश का परिवेश ही ऐसा है कि सभी जनांदोलन की स्थिति ऐसी है। केवल दलित आंदोलन ही नहीं, यहां के कम्युनिस्टों में भी वो धार नहीं है जो कि नेपाल देश के कम्युनिस्टों में है। किसानों का आंदोलन भी कमजोर है। दरअसल, इस देश में जाति धर्म से भी ज्यादा मजबूत है। जाति ही आगे आकर खड़ी हो जाती है। जब भी इस देश में चुनाव होते हैं। सरकार को चुनने का समय आता है तो न विकास मुद्दा रहता है, न बिजली, न पानी, न किसान की समस्या। जो किसान आज आत्महत्या कर रहा है, कल उसी परिवार के लागे मुद्दे की जगह जाति के आधार पर वोट देंगे, बस जाति ही निर्णायक हो गई है।

दूसरे हमारी सांस्कृतिक धरोहर भी कुछ ऐसी ही रही है। इस देश में सच्चाई कम और दोहरे चरित्र ज्यादा कामयाब रहे हैं। इसके अलावा लोगों की मानसिकता भी जिम्मेदार है। जिन हाथों ने काम किया, उनकी हमेशा उपेक्षा हुई और जो लोग बैठकर खाते रहे, पाखंड फैलाते रहे उनकी

पूजा की जाती रही। काम के जरिए सम्मान कभी नहीं मिला। मीडिया की भी बड़ी भूमिका है। सही आंदोलन को गलत दिशा में दिखाना और गैर जरूरी चीजों को मुख्य खबर बनाने का काम भारतीय मीडिया कर रहा है। दलितों में भी आपस में काफी भेदभाव है, छुआ-छूत है। तो कारण दोनों तरह के हैं। आंतरिक भी और बाहरी भी।

### **दलित आंदोलन दक्षिण बनाम उत्तर**

दक्षिण भारत में दलित आंदोलन और उत्तर भारत में दलित आंदोलन में हमें तो कोई फर्क नज़र नहीं आता बल्कि उत्तर की स्थिति में बेहतर पाता हूँ। महाराष्ट्र में अंबेडकर जी का शुरू किया हुआ आंदोलन, आरपीआई आज कई हिस्सों में बंट गया है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु के भी दलित आंदोलनों की स्थिति अच्छी नहीं है। मद्रुरै का उदाहरण लें तो वहां पंचायत चुनावों में दलित खड़े तो होते थे पर कुछ ही दिनों में उन्हें इस्तीफा देना पड़ता था क्योंकि तथाकथित संप्रदांत वर्ग उन्हें कुछ करने ही नहीं देता था। ऐसा कहना उचित होगा कि दोनों ही तरफ के आंदोलन अधूरे हैं। हां, दक्षिण की स्थिति ठीक इसलिए दिखती है क्योंकि वहां पूरे तौर पर स्थिति उत्तर से बेहतर है। शिक्षा से लेकर आर्थिक स्थिति और कानून व्यवस्था भी उत्तर के मुकाबले बेहतर है। तकनीक विकास में भी वो आगे हैं।

### **दलित आंदोलन और राजनीति की कमियां**

बाबा साहेब अंबेडकर का आंदोलन दलित मुक्ति का आंदोलन था और दलित मुक्ति से मेरा मतलब है कि वर्ण व्यवस्था के अभिशाप से दलित समाज को कैसे छुटकारा मिले। दलितों की सदियों से जो समस्या चली आ रही है, चाहे वो छुआ-छूत की हो, अशिक्षा की हो, गरीबी की हो, सामाजिक बहिष्कार की हो, इन सबके मूल में वैदिक धर्म था। अंबेडकर जी ने इसी वैदिक व्यवस्था पर अपने आक्रमण से आंदोलन की शुरुआत की थी। साथ ही उन्होंने दलित समाज को जाग्रत करने की नींव डाली। उनके पहले ऐसा काम गौतम बुद्ध को छोड़कर और किसी ने नहीं किया था। उन्होंने मनु-स्मृति को जलाकर अपने आंदोलन की शुरुआत की थी। महाड़ में जाकर पानी के लिए आंदोलन किया। मंदिर प्रवेश की समस्या को उठाया। उन्होंने दलितों के लिए गणेश-पूजा की मांग भी

उठायी। उन्होंने दलितों को जनेउ पहनाने का भी काम किया। हालांकि वो खुद धर्म में विश्वास नहीं करते थे पर दलितों की मानवाधिकारों की लड़ाई में उन्होंने इन बुनियादी सवालों से काम करना शुरू किया था।

### **अंबेडकर जी जैसा कोई विकल्प नहीं**

अंबेडकर जी का विकल्प कैसे पैदा होगा जब उनके विचार को ही नहीं अपनाया जाएगा। उस सोच से आज के दलित नेता पूरी तरह से भटक गए हैं। अंबेडकर जी को कोई नहीं अपनाता है। कोई सत्ता का नारा देता है तो कोई सत्ता में भागीदारी का नारा देता है और इन सबका उद्देश्य केवल राजनीतिक लाभ और उसके जरिए आर्थिक लाभ ही है। आज के नेतृत्व में सोच का ही अभाव है और इसीलिए जो काम बिना चुनावी राजनीति में गए अंबेडकर जी ने कर दिखाया उसे आज के दलित नेता बहुमत पाने या सरकार बनाने के बाद भी नहीं कर पाते।

अंबेडकर जी के अनुभवों से एक बात तो स्पष्ट तौर पर देखने को मिलती है कि जैसे ही दलित संगठित होना शुरू करते हैं, हिंदू धर्म में तुरंत प्रतिक्रिया होती है और धर्म को बचाने का जिम्मा लेने वाले तुरंत लचीलापन दिखाना शुरू कर देते हैं पर इस बात को दलित समाज का नेतृत्व नहीं अपना रहा है। खैरलांजी की घटना वैदिक काल में दलितों पर हुए अत्याचारों की पुनरावृत्ति ही है जिससे यह साफ है कि वैदिक परंपरा पर हमला किए बिना दलित मुक्ति की बात करना बेमानी है।

### **जातीय सत्ता का दौर**

मंडल आयोग से पहले तक राजनीतिक पार्टियां सत्ता में आती थीं। मंडल आयोग की रिपोर्ट के सामने आने के बाद से अब जातियां सत्ता में आती हैं।

जातीय सत्ता का यह जो दौर है इसे दलित मुक्ति के तौर पर नहीं देखना चाहिए क्योंकि इसमें तो लोग जाति पर कब्जा करके उसे अपने स्वार्थों के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था को बदलने का अभियान, जो कि दलित राजनीति का मुख्य मुद्दा हुआ करता था, वो मुद्दा, मुद्दा ही रह गया है।

जातीय राजनीति से सत्ता में आने का लाभ कुछ लोगों को जरूर होता है। उस जाति के भी कुछ गिने-चुने लोगों को लाभ हो जाता है पर



जातीय सत्ता से न तो दलितों का कल्याण हो सकता है और न ही जाति व्यवस्था का अंत हो सकता है।

आज का दलित नेता हिंदुत्व पर कोई हमला नहीं कर रहा बल्कि हिंदुत्ववादी शक्तियों के साथ समझौते का काम कर रहा है। मायावती तो हर जगह जा-जाकर बता रही हैं कि ब्राह्मण ही बड़े शोषित और पीड़ित हैं। अब तो इसी समीकरण के साथ काम हो रहा है कि कुछ ब्राह्मणों को ठीक कर लो, कुछ क्षत्रियों को मिला लो, कुछ बनियों को साथ ले लो और सत्ता में बहुमत हासिल कर लो। सत्ता की यह होड़ न तो सामाजिक मुक्ति की होड़ है और न ही सामाजिक परिवर्तन की।

### **पेरियार और अंबेडकर**

दक्षिण में जो आंदोलन चला वो पेरियार के ब्राह्मण विरोध की उपज थी। बहुत ही सशक्त आंदोलन था पर दुर्भाग्य की बात यह है कि वो ब्राह्मण विरोधी आंदोलन ब्राह्मणवाद का विरोधी नहीं बन पाया। ब्राह्मणों की सत्ता तो जरूर खत्म हुई और पिछड़ी जातियों के नेता सामने आए। लेकिन हिंदुत्ववादी दायरे में रहते हुए उन्हीं कर्मकांडों को वो भी मान रहे हैं जिन्हें कि ब्राह्मण मानते थे। एक दूसरे ढंग का ब्राह्मणवाद वहां आज भी कायम है। उत्तर भारत में कोई ब्राह्मण विरोधी आंदोलन नहीं चला। जो भी चला वो अंबेडकर का ही आंदोलन था। अंबेडकर के आंदोलन का प्रभाव उत्तर में ज्यादा रहा भी पर यहां दलित उस तरह से सत्ता पर कब्जा नहीं कर पाए जिस तरह से पिछड़ वर्ग के लोगों ने दक्षिण में किया। दलित राजनीति का जहां तक प्रश्न है, दक्षिण भारत में पिछड़ों की राजनीति दलित राजनीति को निगल गई है। वहां तो दलित राजनीति के नाम पर कुछ नहीं है। जो भी है वो उत्तर भारत में है पर उसमें समझ की भी कमी है और बिखराव भी है। सही मायने में देखें तो यह अंबेडकर का दलित आंदोलन भी नहीं है और अंबेडकर की बताई हुई दलित राजनीति भी नहीं है।

### **मानवाधिकार और दलित समाज**

मानवाधिकारों के संदर्भ में जो भी सरकारी प्रयास हुए हैं वो लागू करने के स्तर पर एकदम विफल रहे हैं, उत्पीड़न निरोधक कानून के लागू न होने के चलते अत्याचार बढ़ता ही गया है। आज से नहीं, पिछले पांच

दशकों से, जब से उत्पीड़न विरोधी कानून आए हैं, चाहे वो तमिलनाडु का मामला हो, सिंगूर की घटना हो या भरतपुर में दलितों को मारने की घटना रही हो, इन कानूनों को इस्तेमाल नहीं किया गया है। एक वजह और भी है और वह है ऊपरी अदालतों तक गांव के शोषित दलित की पहुंच न हो पाना। इसका लाभ भी शोषण करने वालों को मिला है।

ऐसा नहीं है कि आज भी दलित समाज में मानवाधिकारों को लेकर जागरूकता नहीं है। 10 वर्ष पहले तक ऐसा नहीं था पर देशभर में पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय की जो राजनीतिक स्थिति रही है, उससे बहुत ज्यादा जागरूकता आई है। इसकी सबसे बड़ी वजह है राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव। न तो राज्य विधानसभाओं में है और न ही देश की संसद में है। इसके अलावा जिन्हें इस दिशा में कुछ जिम्मेदारी सौंपी गई है उन्होंने इस दिशा में कुछ नहीं किया है। आप राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का ही उदाहरण ले लें, इसने पिछले कई वर्षों से अपनी रिपोर्ट ही पेश नहीं की है जबकि इन्हें हर वर्ष अपनी रिपोर्ट पेश करनी होती है और उस पर विचार-विमर्श होता है। जरूरत तो इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति और निगरानी, दोनों की ही है। दूसरी अहम बात यह है कि हम इस देश को आज तक यह भी नहीं समझा पाए कि आरक्षण की जरूरत क्यों है। इस पर अभी भी गतिरोध कायम है। ऐसी स्थिति में आरक्षण भी उस तरह से प्रभावी होकर लाभ नहीं पहुंचा पा रहा है, जिस तरह से होना चाहिए था। मानवाधिकारों के हनन के मामले सामाजिक रूप से तो हैं ही, आर्थिक कारणों से भी बहुत सारे हैं। ईंट भट्ठों से लेकर घर तक, न्यूनतम मजदूरी के सवाल से लेकर समाज में रहने तक, कुएं के पानी से लेकर पाठशाला में बैठने तक, अपने घर में शादी के मौके पर गाजे-बाजे तक जैसे कई उदाहरण हैं जो समझाते हैं कि आज भी दलितों को सामाजिक अधिकार नहीं मिल रहे हैं।

अब इसका समाधान केवल भाषणबाजी के आधार पर नहीं होने वाला है। भारत में भी सरकार को चाहिए कि वो अमरीका में मार्टिन लूथर किंग के काम से सीख लेते हुए इस दिशा में प्रभावी कदम उठाए।

## **महिलाओं की स्थिति**

दलित महिलाओं को बाहर से लेकर घर की चाहरदीवारी तक हिंसा और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। अगर वो पानी भरने जाए, गांव

से दूर या नदी, तालाब की ओर तो उसे घेरा जाता है। यहां तक कि खाना पकाने के ईंधन को जुटाने में भी उसे इन स्थितियों से गुजरना पड़ता है क्योंकि बड़ी जाति के लोगों के पास जमीन है, बाग हैं, खेत हैं, गाय हैं, पर भूमिहीन दलित परिवारों की महिलाओं को तो उन्हीं पर निर्भर होना पड़ता है, जिसका लाभ उठाया जाता है। इसीलिए पानी और ईंधन, इनकी व्यवस्था के लिए सरकार को कारगर कदम उठाने होंगे। इस तरह के आर्थिक कार्यक्रमों के अलावा सामाजिक और शैक्षणिक कार्यक्रम भी बनाने पड़ेंगे।

### **पुलिस का रवैया**

यह एक बहुत ही अहम पहलू है कि हमारी पुलिस व्यवस्था दलित समाज को किस तरह से देखती है, उनके साथ कैसा बर्ताव करती है। पुलिस और राजशक्ति का रवैया कमोबेश दलित विरोधी रहा है। पुलिस महकमे में भी दलितों की तादाद कम है और देखने में यह आया है कि पुलिसकर्मियों में दलितों के प्रति जो सहानुभूति होनी चाहिए, उतनी नहीं है। पहले तो दलितों के उत्पीड़न के मामले में प्राथमिकी ही दर्ज नहीं की जाती और अगर हो भी गई तो चार्जशीट नहीं भरी जाती है। अक्सर ऐसा देखने को मिला है। अभी हाल ही में नागपुर की घटना में भी ऐसा ही हुआ। उत्पीड़न निरोधक कानूनों के तहत मामला दर्ज ही नहीं किया गया। चिंता की बात यह है कि मानवाधिकार संगठनों और जन संगठनों में इस सवाल को लेकर जिस तरह की तेजी और संवेदनशीलता होनी चाहिए थी, वो नहीं है। इससे बेहतर संवेदनशीलता तो 60 और 70 के दशक में मानवाधिकार संगठनों में रही। इस दिशा में एक मजबूत जन आंदोलन की आवश्यकता है।

### **दलित : उपलब्धियां और भटकाव**

आज के दलित की यात्रा भंगी, चूहड़े, चमार जैसी सैंकड़ों जातियों-उपजातियों से शुरू होकर गांधी के 'हरिजन' से होते हुए अंबेडकर के 'दलित' तक पहुंची है। एक याचक की तरह राहत मांगने वाला और दया का पात्र हरिजन मनुष्यता का अधिकार पाने के लिए संघर्षशील मनुष्य के रूप में उभरा है और यह संभव हुआ है अंबेडकर के दलित आंदोलन से, जिसकी वजह से सदियों से जड़ और गूंगे दलितों में

कुछ एहसास जगा और उनकी बोली फूटी है। आज दलितों का जाति-व्यवस्था पर विश्वास दरक चुका है। भले ही यह पूरी तरह खत्म नहीं हुआ हो। भंगी से हरिजन और हरिजन से दलित तक की इस यात्रा में दलित की सबसे बड़ी उपलब्धियां हैं। मसलन, आत्मसम्मान यानी हीन भावना से मुक्ति पाना, अपनी पहचान बनाना, प्रतिरोध की शक्ति और आवाज़ बनकर विपरीत और बर्बर परिस्थितियों में भी हिम्मत जुटाकर उभरना।

### आज की बानगी

लाख बंटा होने पर भी वह आज खैरलांजी के दलित-दमन के खिलाफ एकजुट होकर आंदोलित है, तो कानपुर के अपमान के विरुद्ध भी जूझ रहा है। आज दलित-चेतना का फैलाव अंबेडकर से बुद्ध तक हो चुका है। बुद्ध के 'अप्प दीपो भवः' यानी अपना नेतृत्व खुद करो, उनका उत्प्रेरक बन गया है। यह एक अलग बात है कि उनका प्रतिरोध अभी इतना सक्षम नहीं कि व्यवस्था को बदल डाले। दलित समाज को डा. अंबेडकर के बाद अगर किसी ने सर्वाधिक प्रभावित किया तो वो कांशीराम थे। उनके 'सत्ता में भागीदारी' के नारे ने ऐसी उड़ान भरी कि वह शहरों से गांव तक फैल गया और दलितों का एजेंडा हर राजनीतिक दल में आ गया। इसी नारे के सहारे खासकर हिंदी पट्टी में दलित न केवल सत्ता के गलियारे तक ही पहुंचे बल्कि वे सत्ता के खेल में मोहरे की बजाए खिलाड़ी बन गए हैं।

### भटकाव

हालांकि हर आंदोलन की तरह दलित आंदोलन में भी भटकाव आया। उनमें सवर्णों के प्रति नफरत भी पैदा हुई जिससे ब्राह्मणवाद के खिलाफ एक दलितवाद जन्मा, जो मात्र जातियों का रिप्लेसमेंट चाहता है, उसे तोड़ना नहीं चाहता। वह सामाजिक परिवर्तन, समानता, भाईचारा और आजादी तथा जाति तोड़ो आंदोलन से विमुख होकर अवसरवादी समझौते करने लगा और कई टुकड़ों में बंट गया। इसका एकमात्र कारण था संगठन पर व्यक्ति विशेष का हावी होना। आज का दलित नेतृत्व भी बाकी सवर्ण समाज की तरह ही यह तय नहीं कर पा रहा है कि वह पूंजीवाद के साथ रहे या समाजवाद के।

## दलित-ब्राह्मण

दरअसल, दलितों के आदर्श आज भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं। आरक्षण के सहारे वे प्रशासन के गलियारे तक पहुंचे, बड़े अधिकारी, नेता, मुख्यमंत्री भी बने। फिर भी जाति तोड़ने की बजाय जाति उन्नयन की मुहिम चल पड़ी। दलितों में दलित-ब्राह्मण पैदा हुए, जिन्होंने जाति और धर्म को मजबूत किया। दलित समाज धर्म से भी मुक्त नहीं हो पाया। चंद अपवाद छोड़कर आज भी दलितों का बड़ा तबका वैज्ञानिक सोच और तार्किकता से कोसों दूर है। इसके बावजूद दलित स्वर एक सफल प्रतिरोधी स्वर है जो सत्ता और व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की ताकत रखता है। उसकी चिंता है एक अलग परंपरा-संस्कृति का निर्माण, जिसमें समानता, श्रम की महत्ता और लोकतांत्रिक मूल्यों का समायोजन हो। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है, “अब तो वे हार नहीं विजय का अर्थ जान गए हैं। वे मरना नहीं जीना भी सीख गए हैं। पहले वे मरने के लिए जीते थे। अब वे जिंदा रहने के लिए जीने लगे हैं।”

## भारत में 11 करोड़ और गरीब

भारत सरकार की एक समिति के आंकड़ों के अनुसार भारत में गरीबी रेखा के नीचे गुजर-बसर करने वालों की संख्या में 10 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। ये नए आंकड़े एसडी तेंदुलकर की अध्यक्षता में बनी एक समिति ने दिए हैं। इस समिति की रिपोर्ट को मानें तो पहले से गरीबी रेखा के नीचे जी रही आबादी में 11 करोड़ लोग और जुड़ गए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत की कुल आबादी का कम से कम 38 प्रतिशत हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे का जीवन जीता है। हालांकि इस रिपोर्ट को सार्वजनिक नहीं किया गया है, लेकिन इस रिपोर्ट के आंकड़ों का जिक्र खाद्य सुरक्षा विधेयक को तैयार करने के लिए दिए गए पृष्ठभूमि दस्तावेजों में किया गया है। इन नए आंकड़ों पर पहुंचने के लिए तेंदुलकर समिति ने नई प्रणाली का इस्तेमाल किया है। इस विधि के तहत शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता जैसे मानक प्रयोग किए गए हैं। योजना आयोग से जुड़े एक अधिकारी के अनुसार गरीबी के नए आंकड़ों का पता लगाने वाली नई विधि काफी जटिल है। उनके अनुसार इस विधि में पहले की चिंताओं और शंकाओं का निदान करने का प्रयास किया गया है।

## खर्च

नए आंकड़ों का मतलब ये हुआ कि भारत सरकार को इस तबके के लिए खाद्य सुरक्षा पर ज्यादा पैसा खर्च करना होगा। पिछले चार साल में सरकार ने गरीबी उन्मूलन से जुड़ी अपनी कुछ योजनाओं पर एक करोड़ 51 लाख 460 करोड़ रुपए खर्च किए हैं और आने वाले समय में ये खर्च और बढ़ेंगे। तेंदुलकर समिति के हिसाब से सरकार को खाद्य अनुदान पर नौ हजार 500 करोड़ रुपए अतिरिक्त खर्च करने होंगे। भारत में गरीबी के आंकड़े और इन आंकड़ों को जुटाने की विधि को लेकर विवाद रहा है। इसी साल जून में केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक समिति की रिपोर्ट के अनुसार भारत में आधी आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करती है। वर्ष 2007 में बनी अर्जुन सेनगुप्ता रिपोर्ट में ये आंकड़ा 77 प्रतिशत बताया गया था। जबकि इसी साल जून में बनी ग्रामीण विकास मंत्रालय की एन सी सक्सेना समिति ने कहा था कि भारत की आधी आबादी गरीबी रेखा के नीचे रहती है।

## भारत में हर चौथा व्यक्ति भूखा

ऐसे समय जब भारत विश्व शक्ति बनकर उभरने का दावा कर रहा है, देश में हर चौथा व्यक्ति भूखा है। भारत में भूख और अनाज की उपलब्धता पर एक ताजा रिपोर्ट में ऐसा दावा किया गया है। भारत के एक गैर-सरकारी संगठन की रिपोर्ट के अनुसार आबादी के हिसाब से दुनिया के दूसरे सबसे बड़े देश में तकरीबन 21 करोड़ से अधिक जनसंख्या को भर पेट भोजन नहीं मिल पाता है। संख्या के अनुपात में यह अफ्रीका के सबसे गरीब देशों से भी ज्यादा है।

यह आंकड़े नवदान्य ट्रस्ट द्वारा जारी की गई एक रिपोर्ट का हिस्सा है जिसमें कहा गया है कि 'बढ़ती महंगाई और सरकारों द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली में हाल के दिनों में फैलाई गई अव्यवस्था ने स्थिति को और भी बदतर कर दिया है।' नवदान्य ट्रस्ट की प्रमुख वंदना शिवा कहती हैं कि भले ही सत्ताधारी वर्ग और देश का एक वर्ग जीडीपी यानी सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने को ही सबसे अहम काम समझ रहा है पर सच तो यह है कि एक आम आदमी को प्रति वर्ष मिलने वाली खाद्य सामग्री पिछले 10 बरसों के भीतर 34 किलो कम हो गई है। उनके अनुसार वर्ष

1999 के आसपास भारत में खाद्य सामग्री की प्रति व्यक्ति सालाना खपत 186 किलोग्राम थी जो साल 2001 तक 152 किलोग्राम जा पहुंची। देश में आर्थिक उदारीकरण का काम 90 के दशक में शुरू हुआ था। तब केंद्र में कांग्रेस पार्टी की नरसिंह राव सरकार थी। पिछले पांच बरसों में रिपोर्ट के अनुसार गरीबों को मिलने वाली खाद्य सामग्री में और भी कमी आई है।

### भूख के कारण

नवदान्य ट्रस्ट के अनुसार खाद्य पदार्थों की बढ़ी कीमतों की सच्चाई को छिपाने के लिए सरकार ने खाद्य पदार्थों को स्टील और धातुओं की कीमतों के आकलन वाले वर्ग में डाल दिया है, जिनकी कीमतें पिछले दिनों तेजी से गिरी हैं। इस तरह खाने पीने की वस्तुओं की थोक कीमतों में गिरावट तो देखी गई है लेकिन असल में खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ी हैं। सालाना महंगाई जिस फार्मूले से आंकी जाती है उसमें जरूरत के सामानों के अलग-अलग वर्ग तैयार किए गए हैं जिसमें हाल की कीमतों की तुलना के आधार पर महंगाई दर आंकी जाती है। 'भूख के कारण' नाम की इस रिपोर्ट में कहा गया है कि कृषि क्षेत्र में खाद्य सामग्री के वितरण में निजी कंपनियों के बढ़ते दखल ने खाने-पीने की चीजों की कीमतें बढ़ा दी हैं।

इससे खाने पीने की वस्तुओं पर सरकार द्वारा दी जाने वाली छूट यानी सब्सिडी में भी इजाफा हुआ है। आर्थिक उदारीकरण के पहले दी जाने वाली सब्सिडी 2450 करोड़ रूपए थी जो पिछले वित्तीय वर्ष में बढ़कर 32667 करोड़ रूपए हो गई है। कृषि मंत्री शरद पवार ने कहा है कि अगले साल खाद्य सामग्री पर दी जाने वाली कुल छूट 50,000 करोड़ रूपए हो जाएगी। उदारीकरण के बाद से सरकार ने 'सही जरूरतमंदों को ही छूट' के नाम पर सिर्फ बहुत गरीब वर्गों को ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत सस्ते अनाज देने की सुविधा जारी रखी है। पहले सस्ते दामों पर खाने पीने के सामान की सुविधा सभी नागरिकों को थी। अब यह सुविधा जनसंख्या के सिर्फ एक छोटे वर्ग को ही मिल रही है। एक अनुमान के मुताबिक गरीबों में भी ये सुविधा केवल 10 प्रतिशत लोगों को ही उपलब्ध है।

रिपोर्ट का दावा है कि हाल के बरसों में अनाज उगाने वाली 80

लाख हेक्टेअर भूमि पर एक्सपोर्ट की जाने वाले सामग्री उगानी शुरू कर दी गई है। जबकि एक करोड़ हेक्टेअर से ज्यादा ऐसी जमीन पर जैविक ईंधन पैदा करने वाले पेड़ लगा दिए गए हैं। रिपोर्ट के अनुसार विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए ली जाने वाली जमीनों से कृषि क्षेत्र पर दबाव और बढ़ेगा। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत को हर एक नागरिक के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था करनी होगी, जिसका नियंत्रण स्थानीय स्तर पर किया जाए। साथ ही एक ऐसी कृषि व्यवस्था को दोबारा बढ़ावा देना होगा जहां केवल 'कैश क्रौप' पर जोर न होकर पहले की तरह हर तरह के अनाज उपजाने को बढ़ावा दिया जाए।

### **दक्षिण एशिया में भुखमरी गंभीर**

संयुक्त राष्ट्र की एक नई रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक आर्थिक संकट के कारण दक्षिण एशियाई देशों में भुखमरी पिछले चार दशक में अपने चरम पर पहुंच गई है। बच्चों के कल्याण से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था यूनिसेफ के अनुसार वैश्विक आर्थिक संकट के कारण खाद्य पदार्थों और तेल के दाम बढ़े हैं जिसका असर दक्षिण एशिया पर बुरी तरह पड़ा है।

रिपोर्ट के अनुसार दो साल पहले की तुलना में दक्षिण एशिया में अब करीब दस करोड़ अधिक लोग भूखे पेट सोने को मजबूर हैं। संगठन का कहना है कि दक्षिण एशिया की सरकारों को इस चुनौती से निपटने के लिए तत्काल कदम उठाने चाहिए। यूनिसेफ ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट कहा है कि दक्षिण एशिया संकट के मुहाने पर खड़ा है। बढ़ते आर्थिक संकट का असर गरीबों पर पड़ा है।

### **ज्यादा खर्च भोजन पर ही**

इस क्षेत्र के गरीब लोग अपनी आमदनी का बड़ा हिस्सा भोजन पर खर्च करते हैं और अन्य चीजों - मसलन शिक्षा और स्वास्थ्य पर पैसे खर्च नहीं कर पाते हैं। ऐसे में जब खाद्य-पदार्थों की कीमतें बढ़ी हैं तो उनकी दिक्कतें भी बढ़ गई हैं। संगठन के अनुमान के अनुसार दक्षिण एशिया की तीन चौथाई से अधिक आबादी प्रति दिन दो डॉलर से भी कम पर गुजारा करती है और महिलाओं और बच्चों की स्थिति सबसे खराब है। बढ़ते आर्थिक संकट से सबसे बुरी तरह प्रभावित दक्षिण एशियाई देशों में



नेपाल, बांग्लादेश और पाकिस्तान का नाम है। लेकिन आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा भारत भी इससे अछूता नहीं रहा है जहां बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर कम हुए हैं। यूनीसेफ कहता है कि इन देशों की सरकारों को खाद्य पदार्थ, स्वास्थ्य और शिक्षा पर अधिक से अधिक खर्च करने की जरूरत है ताकि इस संकट से निपटा जा सके। लेकिन आर्थिक मंदी के कारण सरकारों के पास भी पैसे की कमी मानी जा रही है। संगठन ने दो बड़े देशों - भारत और पाकिस्तान से अपने रक्षा बजट में कटौती करने की भी मांग की ताकि ये पैसा लोगों की भलाई के लिए लगाया जा सके।

### **गरीब देशों को और कर्ज मिलेगा**

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने आर्थिक संकट से जूझ रहे गरीब देशों को दिए जाने वाले कर्ज में भारी बढ़ोतरी करने की घोषणा की है मुद्रा कोष का कहना है कि वो अपने सोने के स्टॉक में से कुछ बेचकर अगले दो वर्षों में विकासशील देशों को मिलने वाले कर्ज में आठ अरब डॉलर की वृद्धि करेगा। गौरतलब है कि ये राशि जी-20 यानि संपन्न या संपन्नता की ओर बढ़ रहे देशों की अप्रैल में हुई बैठक के लक्ष्य से भी ज्यादा है। 2014 तक कर्ज की राशि में 17 अरब डॉलर तक की वृद्धि हो जाएगी। लेकिन ध्यान देने वाली बात ये भी है कि कम आय वाली जो अर्थव्यवस्थाएं हैं उनको जो कर्ज मिलता है वो आईएमएफ के कुल बजट का बहुत छोटा सा हिस्सा है। जी-20 की वॉशिंगटन में हुई बैठक में आईएमएफ के बजट को 750 अरब डॉलर तक बढ़ाने की बात हुई थी। अब तक आईएमएफ ब्राज़ील, तुर्की जैसी मध्यम वर्ग की अर्थव्यवस्थाओं पर ही ध्यान केंद्रित करता था। बेहतर गरीब देश खासकर अफ्रीकी देशों पर ध्यान देने की ये नीति पहले से बिल्कुल अलग है। आईएमएफ के प्रमुख डॉमिनिक स्ट्रॉस का कहना है कि ये बदलाव “अभूतपूर्व” हैं और इससे लाखों लोगों को गरीबी से उबारने में मदद मिलेगी। लेकिन जो राशि दी जा रही है वो अभी भी दूसरे कर्जों के मुकाबले काफी कम है।

## विकास और हिंसा

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में तेज आर्थिक विकास ने जहां उसे शक्तिशाली राष्ट्रों की सूची में शामिल कर दिया है, वहीं लोकतंत्र के पर्व आम चुनाव के समय शायद ये अहसास भी जरूरी है कि सामाजिक असमानता भी बढ़ी है। ये वर्ष 2020 तक भारत के असल में महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा के लिए एक बड़ा खतरा है मुंबई में रहने वाली लक्ष्मी अपने पति के साथ कूड़ा चुनने का काम करती है और इसे बेचकर अपना जीवनयापन करती हैं।

इस शहर में वो अकेली नहीं हैं दस हजार दूसरे लोग भी इसी तरह कूड़ा चुनकर जिंदगी बसर करते हैं। छह लाख से अधिक लोग झोपड़ी या स्लम में रहते हैं। मुंबई की दो करोड़ से अधिक आबादी को भारत के आर्थिक विकास का चमत्कार कहा जाता है। लक्ष्मी ने बेहतर जिंदगी की आस लेकर बड़े शहर का रुख किया था। आज वो सौ रुपये पर अपना गुजारा करती है, जो कि बहुत ही कम है, लेकिन लक्ष्मी कहती है कि गांवों में वो जो कमा पा रही थी उससे ये राशि अधिक है। ऐसी गरीबी भारत के वैश्विक शक्ति बनने के लिए एक चुनौती है। आर्थिक विकास हुआ है, लेकिन जबर्दस्त सामाजिक असमानता है।

हैदराबाद की लक्ष्मी, ये लक्ष्मी भारत की एक बड़ी सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) कंपनी में 60 इंजीनियरों के दल का नेतृत्व करती हैं। यहां काम करने वाले प्रशिक्षित इंजीनियर हैं, ताकि प्रतिस्पर्धी आईटी सेक्टर में टिक सकें। सिर्फ साठ साल पहले ये कंपनी खाना पकाने के तेल उत्पादन का काम करती थी। अब इस कंपनी में लगभग एक लाख कर्मचारी काम करते हैं और ये 1991 में शुरू हुए आर्थिक उदारीकरण की नीति का नतीजा ही है।

हैदराबाद की लक्ष्मी का कहना है कि धनी देशों की मांग भारतीय तकनीकी श्रेष्ठता को अभी बरकरार रखे हुए है। लेकिन वो कहती है कि

भारत के विकास के लिए देश में भी आईटी की मांग अहम है। तेज विकास दर वाली इन कंपनियों में योग्य कर्मचारी हैं, जोकि विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों से मुकाबला कर रहे हैं। भारत में सबसे अधिक युवा काम करने वाले हैं, हमारी 28 प्रतिशत आबादी युवा है। वे अंग्रेजी बोलते हैं, सक्षम और शिक्षित हैं, लेकिन देश में भीषण गरीबी है, ऐसे में आर्थिक मामलों के जानकारों का कहना है कि भारत को असमानता से बचने के लिए अपनी समृद्धि को फेंकना होगा।

आर्थिक मामलों के जानकार राजीव कुमार का कहना, “ये सोचना बंद करना होगा कि बिना कोशिश और स्वतः ही भारत 6 प्रतिशत की दर से विकास करता रहेगा।” भारत के आर्थिक विकास की दर पिछले चार साल से लगातार नौ फीसदी के करीब रही है। लेकिन साथ-साथ असमानता भी बढ़ी है। दुनिया में अमीरी-गरीबी की खाई 1980 तक स्थिर थी, लेकिन बाद के दशकों में ये खाई बढ़ रही है। उसी तरह भारत में भी जिस राज्य के पास अधिक धन था वो गरीब राज्यों के मुकाबले में तेजी से विकास कर रहा है। विश्व मुद्रा कोष का कहना है, “भारतीय अर्थव्यवस्था की ज्वार उठ रही है लेकिन सभी नाव उस ज्वार के साथ उठने में कामयाब नहीं हो रहे हैं।”

हाल के वर्षों में, विशेषकर ग्रामीण भारत में बढ़ती असामनता ने माओवादियों को बढ़ावा दिया और इस समय वे भारत के बड़े भू-भाग (40 प्रतिशत) पर मौजूद हैं। वैश्विक आर्थिक मंदी की वजह से लगभग 20 हजार भारतीयों को विदेशों में नौकरी गंवानी पड़ी है और वे वापस लौट आए हैं।

वित्त वर्ष 2009 की तीसरी तिमाही यानी अक्टूबर से दिसंबर के बीच जीडीपी सिर्फ 5.3 फीसदी की दर से बढ़ी। इसके कारण आंकड़ा जारी होने के बाद भारतीय शेयर बाजारों में भी गिरावट दर्ज की गई। जबकि इससे पिछले वर्ष की तीसरी तिमाही में जीडीपी 8.9 फीसदी की दर से बढ़ी थी। वर्ष 2003 के बाद किसी तिमाही में आई यह सबसे बड़ी गिरावट थी।

विश्लेषकों का कहना है कि अमरीकी सबप्राइम संकट से शुरू वैश्विक मंदी का भारत पर असर ताजा आंकड़ों से स्पष्ट दिखाई देता है आर्थिक विकास की बातों से अलग ही कहानी भोपाल के गैस पीड़ितों की है। विकास की मार झेल रहे भोपाल गैस पीड़ितों ने पिछले लगातार

तेईस वर्षों से अपने साथ हो रही 'अनदेखी' और 'नाइंसाफी' को उजागर करने के लिए 'दिल्ली चलो' का रास्ता ढूँढा।

पीड़ितों और उनके परिवार के पुनर्वास की विस्तृत नीतियों के अलावा संगठनों की मांग है कि भारत सरकार यूनियन कार्बाइड और अब वर्तमान मालिक दाऊ कैमिकल्स के खिलाफ कानूनी कारवाई करे, दाऊ की भारत में व्यावसायिक गतिविधियों पर रोक लगाए, उससे प्लांट में मौजूद कचरे की सफाई का खर्च मांगे और कचरे की मौजूदगी के कारण लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण को हुए नुकसान की भरपाई करने को कहे।

## **रविवार, 29 अक्टूबर, 2006**

दिल्ली के रिहायशी इलाकों में व्यावसायिक गतिविधियों को बंद करने के अभियान के विरोध में व्यापारियों ने तीन दिनों का बंद रखा। इस दौरान राजधानी के तमाम इलाकों से पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच छिटपुट झड़पों की खबरें भी आईं। 2008 में सीलिंग के विरोध में हुए विरोध-प्रदर्शन के दौरान चार लोगों की मौत हो गई थी। इसको ध्यान में रखते हुए इस बार बड़ी तादाद में राज्यभर में पुलिस बल और सुरक्षाकर्मी तैनात किए गए।

## **सीलिंग अभियान**

गौरतलब है कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार लगभग 44 हजार दुकानों को सील किया जाना है व्यापारियों का कहना है कि न्यायालय के आदेश से लगभग पांच लाख लोगों की रोजी-रोटी पर असर पड़ेगा। उस पर जिन तमाम मामलों का जिक्र किया गया है उनमें से ज्यादातर मामलों में हुए हिंसक वारदात का संबंध सीधे-सीधे विकास से जुड़ा हुआ है सीलिंग का मुद्दा कानूनी दांवपेंच में जरूर उलझा हुआ है। लेकिन सीलिंग के पहले और बाद में दोनों ही हालत में कहीं न कहीं विकास कार्य जरूर प्रभावित होंगे।

## **हिंसा के प्रति आम आदमी का बढ़ता झुकाव**

भारत में अगर आम आदमी को परिभाषित करना हो तो खेतों में काम करने वाले खेतिहर मजदूर या किसान से बेहतर उदाहरण कोई और

नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान के संदर्भ में अगर कहा जाए तो यही वह वर्ग है जो आम आदमी के सही रूप और आकार में पेश करने के लिए बेहद सटीक बैठता है। लेकिन भारत का यही आम आदमी आज परेशान है। खुद को समस्याओं से घिरा हुआ महसूस कर रहा है। उसे अब जिंदगी जीने के लिए विकल्प के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। भारत में इस आदमी की आबादी कुल आबादी का तकरीबन साठ प्रतिशत है यानि भारत जिसकी आबादी एक अनुमान के मुताबिक एक अरब से ऊपर पहुंच चुकी है वहां तकरीबन साठ करोड़ से ज्यादा की जनसंख्या मुसीबतों के पहाड़ तले दबी हुई है। यही वजह है कि विभिन्न राज्यों के सुदूर ग्रामीण इलाकों में रहने वाले किसानों ने भी हिंसा की एक राह पकड़ ली है। जहां वो खुद अपने ही हाथों मौत को गले लगा लेते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो भारत का किसान आज आत्महत्या करने पर मजबूर है।

भारत के बारे में कहा जाता है कि यह किसानों का देश है यहां की अर्थव्यवस्था खेती पर निर्भर है। जाहिर है किसानों की भूमिका भारतीय अर्थव्यवस्था में काफी अहम है। ऐसे में देश के अलग-अलग राज्यों में किसानों की आत्महत्या की बढ़ती वारदातों ने उस मूलभूत समस्या की ओर सभी का ध्यान खींचा है, जिसकी अनदेखी किए जाने की वजह से आज किसान वर्ग हैरान और परेशान हैं, जिस देश की मिट्टी सोना उगलने का माद्दा रखती है, उसी जमीन पर खेती करने वाला किसान अब मौत को अपना हमसफर बनाने के बारे में सोचने को मजबूर हो गया है। समस्या वाकई में बेहद गंभीर है। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में किसानों के आत्महत्या के बारे में सभी जानते हैं। लेकिन अब छत्तीसगढ़ में हर दिन चार किसानों की आत्महत्या की खबर ने राज्य में एक नई बहस छेड़ दी है।

केंद्रीय गृह मंत्रालय के राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो ने जो आंकड़े जारी किए हैं उसके अनुसार छत्तीसगढ़ में पिछले वर्ष 1593 किसानों ने आत्महत्या की है और किसानों की आत्महत्या का सिलसिला पिछले कई सालों से जारी है। इन आंकड़ों के अनुसार जनसंख्या के मुकाबले किसानों की आत्महत्या के मामले में छत्तीसगढ़ पूरे देश में सबसे आगे है हालांकि राज्य के मुख्यमंत्री रमन सिंह ने इन आंकड़ों को बेबुनियाद बताते हुए कहा है कि ये आंकड़े मनमाने तरीके से तैयार किए

गए हैं और इनमें कोई सच्चाई नहीं है। लेकिन राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो ने दावा किया है कि उसे ये आंकड़े राज्य सरकार ने ही उपलब्ध कराए हैं। दो करोड़ 80 लाख की जनसंख्या वाले छत्तीसगढ़ में किसानों की आबादी 35 लाख के आसपास है। धान का कटोरा कहलाने वाले छत्तीसगढ़ में अब भी धान ही मुख्य फसल है। राज्य में धान की 23 हजार से भी अधिक किस्में हैं। हालांकि धान की खेती करने वाले किसानों की हालत भी अच्छी नहीं है लेकिन नकदी फसलों के चक्कर में फंस कर कर्ज लेने और फिर आत्महत्या करने वाले आंध्र प्रदेश या महाराष्ट्र के किसानों जैसी स्थिति छत्तीसगढ़ में नहीं है।

### **किसान बनाम किसानी**

समाजवादी आंदोलन से जुड़े रहे कृषि वैज्ञानिक और किसान नेता आनंद मिश्रा मानते हैं कि छत्तीसगढ़ में खेती की हालत खराब है। लेकिन उनका मानना है कि बाजार के दबाव में बदलती हुई जीवन शैली और उपभोग की तीव्र लालसा के कारण आत्महत्या बढ़ रही है। आनंद मिश्रा कहते हैं, “किसान की आत्महत्या और किसानी यानी खेती में असफलता के कारण होने वाली आत्महत्या में फर्क करने की जरूरत है।” असल में आत्महत्या के जो जिलेवार आंकड़े तैयार होते हैं, उसमें एक श्रेणी मृतक के पेशे का होता है। जब किसानों की आत्महत्या की बात होती है तो किसी भी कारण से आत्महत्या करने वाले किसान को ‘किसान’ श्रेणी के आंकड़े में रख लिया जाता है। उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ की प्राचीन राजधानी रतनपुर भरइपारा के किसान कार्तिक राम सतनामी ने कीटनाशक आत्महत्या कर ली। कार्तिक के परिजन बताते हैं कि इस साल आम की फसल में उसे भारी मुनाफा हुआ था। लेकिन फसल बेचने से जो रकम उसे मिली थी। उसका बड़ा हिस्सा वह शराब पीकर खत्म कर रहा था। घरवालों में इस बात को लेकर कहा-सुनी हुई तो बुधवार को कार्तिकराम ने शराब के नशे में ही कीटनाशक पीकर आत्महत्या कर ली। जाहिर है, इस आत्महत्या को किसान की आत्महत्या के रूप में दर्ज किया गया है और जब वर्ष 2008 में किसानों की आत्महत्या के आंकड़े तैयार किए जाएंगे तो उसमें कार्तिकराम सतनामी का नाम भी शामिल हो जाएगा। किसानों के विस्थापन और जल-जंगल-जमीन के मुद्दे पर लंबे समय से आंदोलन चलाने वाले नदी घाटी मोर्चा के गौतम बंदोपाध्याय इसे महज

आंकड़ों का खेल बताते हैं। खेती में असफलता के कारण किसानों की आत्महत्या न हो तो भी राज्य में किसानों की आत्महत्या की बढ़ी हुई दर तो चिंताजनक है ही।

छत्तीसगढ़ में औद्योगीकरण और आत्महत्या जैसे मुद्दे पर पिछले कई सालों से काम कर रहे लंदन स्कूल ऑफ इकानामिक्स के प्रोफेसर जोनान पैरी किसानों की आत्महत्या को इतना सरलीकृत किए जाने के खिलाफ हैं। प्रोफेसर पैरी के अनुसार, “किसानों की आत्महत्या के आंकड़ों को संपूर्णता में देखने की जरूरत है। जिस तरह के आंकड़े सामने आए हैं, उससे भ्रम पैदा होता है। ये बात तो साफ समझ में आती है कि इन आंकड़ों पर गंभीरता से काम नहीं हुआ है।” लेकिन जिस राज्य सरकार को इन आंकड़ों पर गंभीरता से काम करना है, उसने इन आंकड़ों को खारिज कर दिया है और राज्य के किसान? फिलहाल तो इन आंकड़ों से दूर अपने खेतों में मानसून पूर्व की तैयारी में जुटे हुए हैं।

### **किसानों की आत्महत्या में कमी नहीं**

महाराष्ट्र में सरकार की कई राहत योजनाओं के बावजूद किसानों में आत्महत्या की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट में यह जानकारी दी गई है। रिपोर्ट में सरकारी योजनाओं को लागू करने में कमी और सरकारी एजेंसियों के बीच समन्वय को इसके लिए जिम्मेदार बताया गया है। हाल के वर्षों में महाराष्ट्र के किसानों ने बढ़ी संख्या में आत्महत्या की है। आत्महत्या की मुख्य वजह कर्ज ना चुका पाना है, केंद्र और राज्य सरकार ने प्रभावित किसानों के लिए 40 अरब रूपए के पैकेज का वादा किया था। आकलन ये है कि हर साल भारत में 10 हजार किसान आत्महत्या करते हैं। भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट में कहा गया है कि राहत योजनाओं को लागू करने में गंभीर कमियां थी।

### **कमियां**

रिपोर्ट में कहा गया है - राहत पैकेज में कई तरह की कमियां महसूस की गई। राहत कोष का पूरी तरह इस्तेमाल नहीं हुआ। इस पैकेज के तहत किसानों की चिंता के कई अहम पक्षों पर ध्यान नहीं दिया गया है। सिर्फ विदर्भ के किसानों की चिंता कम होने से विश्वास का

माहौल पैदा नहीं होता। वर्ष 2005 में महाराष्ट्र सरकार ने किसानों में बढ़ती आत्महत्या की संख्या को देखते हुए एक राहत पैकेज की घोषणा की थी। उस साल 455 किसानों ने आत्महत्या की थी। जबकि एक साल पहले ये संख्या 146 थी।

वर्ष 2006 में केंद्र सरकार ने विदर्भ क्षेत्र के सबसे ज्यादा प्रभावित छह जिलों और चार अन्य राज्यों के 25 प्रभावित जिलों के लिए विशेष पुनर्वास पैकेज की घोषणा की थी। किसानों की आत्महत्या के मामले में महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र की स्थिति सबसे बुरी रही है। आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक अप्रैल 2006 से मार्च 2007 के बीच विदर्भ क्षेत्र में किसानों की मौत की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है और ये बढ़कर 1414 हो गई है।

### आंकड़े

रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2007-08 के पहले छह महीनों में ये संख्या 600 है। आधिकारिक आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2006 में 13 लाख से साढ़े 17 लाख किसान मानसिक रूप से परेशान थे। इनमें से चार लाख 34 हजार किसानों को ज्यादा पीड़ित किसानों की सूची में रखा गया था। रिपोर्ट के मुताबिक राहत पैकेज लागू करने वाली एजेंसियों ने इन आंकड़ों के बारे में जानने की जरूरत नहीं महसूस की और इसके कारण राहत कार्यों को लागू करने में काफी कमियां रही। रिपोर्ट में सरकार की इस बात के लिए आलोचना की गई है कि सरकार ने किसानों को शिक्षित करने के लिए कोष जारी नहीं किया ताकि किसानों को उनके अधिकारों के बारे में बताया जा सके। करीब 75 प्रतिशत किसान गैर कानूनी रूप से कर्ज देने पर लगी पाबंदी के बारे में जानते तक नहीं। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इस तरह के कर्ज पर रोक के बावजूद कई मामलों में किसान ज्यादा ब्याज भी देते हैं। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कई बैंक ज्यादा ब्याज दी की मांग करते हैं, जिनकी उन्हें अनुमति तक नहीं, किसानों की आत्महत्या के मामले में सबसे ज्यादा प्रभावित राज्य हैं - आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र।



## इतना नाराज़ क्यों है लोग

भारत में आम जनता के भीतर हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति की जो तस्वीर आज दिखाई दे रही है, वह अचानक से नहीं बढ़ी है। इसकी भी एक लंबी कहानी है। जिसके तहत पहले तो लोगों को यह यकीन दिलाया गया कि, उनकी हर समस्या का हल पुलिस प्रशासन, अदालत या फिर सरकार के पास हैं लेकिन एक लंबा वक्त गुजरने के बाद लोगों को इस कड़वी सच्चाई का अहसास हो गया कि उन्हें अगर इंसाफ चाहिए तो इसके लिए खुद कदम आगे बढ़ाना होगा। यह कदम किन-किन रास्तों पर या किस दिशा में आगे बढ़ाने की जरूरत है इसके बारे में फैसला लोगों ने हालात पर छोड़ दिया। आखिरकार लोगों की हिम्मत जवाब देती नजर आ रही है। देश के हर हिस्से में हिंसक वारदातों की चिंगारी सुलग रही है। हर वर्ग को अब यही लगने लगा है कि इस व्यवस्था में इंसाफ की मांग करना अपने आपको धोखे में रखने जैसा है। देश के भीतर बड़ी-बड़ी समस्याएं मुंह बाएं खड़ी हैं, ऐसे में भला आम आदमी की कौन सुनेगा। यह बात अब लोगों के दिमाग में घर कर चुकी है। आम जनता अब कानून को अपने हाथ में लेने से जरा भी नहीं हिचकती है। चाहे वो गाजियाबाद में मुरादनगर इलाके के बृजविहार कॉलोनी में शांतिनिकेतन पब्लिक स्कूल के आठवीं क्लास में पढ़ने वाला छात्र सरताज हो या फिर इंजीनियर सतेंद्र दूबे के हत्यारे। सरताज ने 22 मार्च 2010 को मामूली सी बात पर अपने साथ पढ़ने वाले छात्र मोंटी को स्कूल परिसर में चाकू से गोद कर लहूलुहान कर दिया। इससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि महानगरों और उससे सटे शहरों में छोटे-छोटे बच्चों के अंदर हिंसा की प्रवृत्ति किस हद तक बढ़ चुकी है कि मामूली सी बात पर एक दूसरे पर जानलेवा हमला करने से भी बाज नहीं आते हैं। सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि चारों तरफ समस्याओं का अंबार सा लगा हुआ है।

## पांच युवकों की आत्मदाह की कोशिश

भारत के पूर्वोत्तर राज्य मणिपुर में पांच युवकों ने राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री ओकरम इबोबी सिंह के दफ्तर के सामने खुद को आग लगाकर आत्मदाह करने की कोशिश की। उन्होंने ऐसा एक विशेष कानून का विरोध करने के लिए किया, जिसके तहत सुरक्षा बलों को व्यापक अधिकार मिल गए। मणिपुर में हजारों लोग कर्फ्यू के बावजूद इस कानून को खत्म करने की मांग को लेकर सड़कों पर उतर आए।

वे अर्धसैनिक बल असम राइफल्स के सैनिकों को सजा दिए जाने की भी मांग कर रहे थे, जिन पर एक तीस वर्षीय महिला से बलात्कार और हत्या का आरोप है इसके विरोध में मणिपुर के 16 स्वयंसेवी संगठनों ने अपना अभियान रोकने से इनकार कर दिया। इससे पहले कई मणिपुरी महिलाओं ने इम्फाल में निर्वस्त्र होकर बलात्कार की घटना के खिलाफ प्रदर्शन किया था।

तत्कालीन गृह राज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने घोषण की थी कि उस इलाके से असम राइफल्स को वापस बुला लिया जाएगा और दोषियों के खिलाफ मुकदमा चलाया जाएगा। उन्होंने ये भी कहा था कि इस विषय में पुनर्विचार होगा कि क्या नया कानून मणिपुर में जारी रहेगा। पूर्वोत्तर राज्य मणिपुर में सुरक्षा बलों को मिले विशेषाधिकार का विरोध कर रहे एक छात्र नेता की आत्महत्या से हुई मौत के बाद राज्य में अनिश्चितकालीन बंद का सामान्य जनजीवन पर व्यापक असर पड़ा। चूंकि राज्य में लंबे समय से चरमपंथ चल रहा था इसलिए उसे अशांत क्षेत्र घोषित करके वहां सुरक्षा बलों को विशेषाधिकार दिया गया। इस कानून का विरोध करते हुए एक छात्र नेता पेबम चितरंजन ने आत्मदाह कर लिया था जिससे उनकी मौत हो गई।

## पटियाला में आत्मदाह की कोशिश

पंजाब के शहर पटियाला के एक छोटे कारोबारी ने नगरपालिका द्वारा उसकी मांगे न पूरा करने के विरोध में सबके सामने आत्मदाह करने की कोशिश की। गोपाल कृष्ण नामक इस व्यक्ति ने पटियाला के एक चौराहे पर केरोसिन तेल अपने ऊपर डाला और फिर भीड़ के सामने आग लगा ली। इस दौरान पुलिसवाले और मीडिया के लोग भी वहां मौजूद थे।

हालांकि गोपाकृष्ण को आग लगाने से रोकने के लिए तो कोई आगे नहीं आया। लेकिन जब आग भड़क गई तो उसे बुझाने के लिए कई लोगों ने प्रयास किए। आग लगाने से पहले उसने कहा कि वो रेहड़ीवालों की हालत की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए आत्मदाह कर रहा है। सन् 2004 में रेहड़ वालों को नगरपालिका ने अपनी जमीन से बेदखल कर दिया था। उसके बाद से ये लागे उसके स्थान पर कोई और जगह देने की मांग कर रहे थे।

### **तेलंगाना मुद्दे पर आत्मदाह**

उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्र वेणुगोपाल रेड्डी ने आत्मदाह कर लिया। उनके अलावा तेलंगाना इलाके के दो और लोगों ने भी इस मुद्दे को लेकर आत्महत्या कर ली थी। तेलंगाना राष्ट्र समिति के नेता हरीश राव का दावा है कि पृथक तेलंगाना को लेकर अब तक कई लोगों ने आत्महत्या की है। उनका कहना है कि पृथक तेलंगाना को लेकर केंद्र सरकार के कोई निर्णय न लेने से हताश होकर लोगों ने अपनी जानें दी।

### **छात्र ने आत्मदाह की कोशिश की**

अलग तेलंगाना राज्य की मांग पर आंध्र प्रदेश विधानसभा का घेराव करने जा रहे छात्रों और पुलिस के बीच झड़प के दौरान भी एक छात्र ने आत्मदाह की कोशिश की। हैदराबाद के बीचों-बीच हुई इस घटना में छात्र बुरी तरह झुलस गया।

### **तेलंगाना मुद्दे पर एक और आत्महत्या**

आंध्र प्रदेश से पृथक तेलंगाना राज्य के गठन के मुद्दे पर हैदराबाद स्थित उस्मानिया विश्वविद्यालय के एक छात्र ने फांसी लगा कर अपनी जान दे दी। पुलिस के अनुसार आत्महत्या करने वाला साईं कुमार इंजीनियरिंग के प्रथम वर्ष का छात्र था और उसने हॉस्टल के अपने कमरे में फांसी लगाई, जिसके बाद कुछ छात्रों ने उसे अस्पताल पहुंचाया जहां डाक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। इससे पहले भी 20 फरवरी को एक छात्र ने इसी मुद्दे पर आत्मदाह किया था, जिसके बाद उसकी मौत हो गई थी।

## निराशा

पुलिस का कहना है कि नलगोंडा जिले के कोदाद का रहने वाला साईं कुमार ने एक पत्र भी छोड़ा है जिसमें उसने लिखा है कि वो तेलंगाना के लिए अपनी जान दे रहा है, क्योंकि उसे तेलंगाना के राजनेताओं ने निराश किया है साईं कुमार नलगोंडा जिले के ऐसे तीसरे छात्र हैं जिसने पिछले तीन महीनों में तेलंगाना मुद्दे पर आत्महत्या की है। पृथक तेलंगाना राज्य के लिए आंदोलन चलाने वाली तेलंगाना संयुक्त संघर्ष समिति का दावा है कि अब तक 3 से अधिक छात्रों और युवाओं ने तेलंगाना राज्य के समर्थन में आत्महत्या की है।

‘फना’ के विरोध में फना हुआ युवक

अभिनेता आमिर खान की फिल्म ‘फना’ के विरोध में पिछले दिनों गुजरात में आत्महत्या की कोशिश करने वाले व्यक्ति की मौत हो गई। आत्मदाह की कोशिश करने वाले व्यक्ति प्रवीण जोशी ने जामनगर के एक अस्पताल में आखिरी सांस ली। जोशी ने ‘फना’ के विरोध में एक सिनेमाघर में खुद को आग लगा ली थी जिसमें वो 90 प्रतिशत से भी ज्यादा जल गए थे। गौरतलब है कि नर्मदा बांध के बारे में आमिर खान की टिप्पणी के विरोध में भारतीय जनता युवा मोर्चा सहित कुछ राजनीतिक संगठनों ने गुजरात में उनकी फिल्म ‘फना’ के प्रदर्शन का विरोध किया था। आमिर खान इस फिल्म में मुख्य किरदार की भूमिका में हैं। आखिरकार छह जून को जामनगर के एक सिनेमाघर में यह फिल्म दिखाई गई जिसके पांच दिन बाद यानी 11 जून को फिल्म के प्रदर्शन के विरोध में 30 वर्षीय प्रवीण ने खुद को आग लगा ली थी।

राज्य में इस फिल्म का विरोध कर रहे लोगों का कहना था कि यदि आमिर खान नर्मदा बांध के बारे में की गई अपनी टिप्पणी के लिए माफी मांग लें तो राज्य में इस फिल्म को प्रदर्शित होने दिया जाएगा। इस पर आमिर खान ने यह कहते हुए माफी मांगने से मना कर दिया था कि उन्होंने बांध के खिलाफ एक भी शब्द नहीं कहा था बल्कि बांध के कारण विस्थापित हो रहे गरीबों के पुनर्वास पर ध्यान देने की बात कही थी।

मीडिया ने आत्मदाह के लिए ‘उकसाया’

बिहार की पुलिस इस बात की जांच कर रही है कि क्या मीडियाकर्मियों ने 15 अगस्त 2008 के मौके पर एक व्यक्ति को आत्मदाह

करने के लिए प्रेरित किया। राज्य के गया जिले में 15 अगस्त को मनोज मिश्र नाम के एक व्यक्ति ने खुद को आग के हवाले कर दिया था। आत्मदाह की इस घटना को कुछ समाचार चैनलों ने रिकॉर्ड भी किया था।

इस आत्मदाह की कोशिश में मनोज 60 प्रतिशत जल गए थे और फिर उनकी अस्पताल में मौत हो गई। पुलिस के मुताबिक मनोज ने दुग्ध उत्पादन समिति सुधा डेयरी पर उसके पैसों का भुगतान न करने के विरोध में ऐसा किया। हालांकि डेयरी के अधिकारियों ने इस बात से साफ इन्कार किया कि मनोज का कोई पैसा बकाया था। जिले के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी अमित कुमान जैन ने बताया कि इस आत्मदाह के बाद कुछ मीडियाकर्मियों के खिलाफ भी एक मामला दर्ज कर लिया गया।

### **मीडिया का दागदार दामन**

उन्होंने बताया, “कुछ स्थानीय टेलीविजन चैनलों की टीमों घटनास्थल पर मौजूद थी। कुछ मीडियाकर्मियों पर आरोप है कि उन्होंने इस व्यक्ति को आत्मदाह करने के लिए प्रेरित किया।” उन्होंने कहा कि इस घटना के लिए जो भी लोग दोषी हैं, उनके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी। हालांकि इस मामले में किसी मीडियाकर्मी को नामजद नहीं किया गया। आत्मदाह करने वाले मनोज मिश्र के बेटे प्रभाकर कुमार ने बताया कि घटनास्थल पर मौजूद पत्रकारों ने उनके पिता को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। प्रभाकर बताते हैं, “मेरे पिता ने कुछ सुरक्षाकर्मियों और पत्रकारों की उपस्थिति में खुद को आग लगाई पर इनमें से किसी ने उन्हें बचाने की कोशिश नहीं की।”

### **भूमिका पर सवाल**

हालांकि जिन मीडियाकर्मियों ने इस घटना को अपने कैमरे से रिकॉर्ड किया था वो इस बात से साफ इन्कार करते हैं कि उन्होंने मनोज को आत्मदाह करने के लिए उकसाया। पिछले कुछ दिनों में जिस तेजी से मीडिया चैनल बढ़े हैं, उनकी भूमिका कम विवादित नहीं रही है। हाल ही में एक समाचार चैनल पर एक महिला को अपने पति की कथित प्रेमिका के साथ मारपीट करते हुए दिखाया गया था। इसी तरह मीडिया की मौजूदगी में एक युवक को तब तक मारा जाता रहा जब तक की वो मर नहीं गया। इस मृतक पर भैंस चुराने का आरोप था।

## आत्महत्या को मजबूर विदर्भ के किसान

नागपुर के 400 किसानों वाले लिंगा गांव के 26 वर्षीय किसान कैलाश झाड़े की शादी की बात चल रही थी। लेकिन समस्या यह थी कि शादी के लिए पैसे नहीं थे। वह कर्ज भी नहीं ले सकते थे क्योंकि परिवार पहले ही साहूकार और बैंक के कर्जों में डूबा हुआ था। कैलाश को कर्जों से मुक्ति का एक ही रास्ता नजर आया आत्महत्या। उसने अपनी नई दुनिया बसाने के इरादे को तिलांजलि दी और आत्महत्या करने के साथ ही इस दुनिया को ही अलविदा कह गया। कैलाश के चचेरे भाई प्रमोश मनोरथी बताते हैं, “उनके ऊपर बैंक का कर्ज था और वह गहरी सोच में डूबे रहते थे कि बैंक का कर्ज कैसे चुकाएंगे और शादी का कर्ज उन्हें कौन देगा।”

कैलाश की परेशानी विदर्भ के कपास उगाने वाले 32 लाख किसानों की परेशानियों से मिलती जुलती है। उनकी कहानी छतर के 470 किसानों की कहानी है। हर दिन इलाके में औसतन तीन किसान कैलाश की तरह आत्महत्या करना चाह रहे हैं। कैलाश पर केवल 22 हजार रुपए का कर्ज था लेकिन वह पिछले 10 साल से अदा नहीं कर पा रहा था। इतनी छोटी रकम के लिए अपनी जान से हाथ धो बैठना शायद बड़े शहर वालों की सोच से बाहर हो। लेकिन विदर्भ में इससे भी छोटी राशि के कर्जदार किसान आत्महत्या कर रहे हैं।

## शेठे परिवार

दूसरी तरफ 40 वर्षीय वितोभा शेठे एक बड़े किसान थे। यवतमाल जिले में मागी गांव के सबसे अमीर किसान। उन पर पौने तीन लाख रुपए का कर्ज था। उनके बड़े भाई भगवान शेठे कहते हैं, “उस पर सरकार का कर्ज था। हमने सोचा था कि सरकार का कर्ज है जब होगा तो वापस कर देंगे। वह अपनी ही जान ले लगा ऐसा हमने सोचा नहीं था।” पास के एक गांव में 35 वर्षीय चंद्रभान मध्यम वर्ग का किसान था। उस पर डेढ़ लाख रुपए का कर्ज था। उसने आत्मदाह कर लिया। उनकी विधवा रेखा कहती हैं, “वह आत्महत्या की बात किया करते थे। मैं उन्हें समझाती थी कि सब ठीक हो जाएगा। लेकिन उन्होंने मेरी नहीं सुनी। मैं उनसे नाराज हूँ।”

रेखा की अपने दिवंगत पति से नाराजगी मामले की गंभीरता का पता देती है। आत्महत्या करने वाले अधिकतर किसान यह समझकर अपनी जान ले लेते हैं कि उन्हें कर्जों से छुटकारा मिल जाएगा। लेकिन कर्ज उनके परिवार वालों को देना पड़ता है। दूसरी बात यह कि वह अपने पीछे अपने बच्चों की जिम्मेदारियां अपनी विधवाओं पर छोड़कर चले जाते हैं।

### **अकेली लड़ाई**

अफसोस की बात यह है कि इलाके में कोई ऐसी सरकारी या निजी संस्था नहीं है जो इन विधवाओं और उनके बच्चों की देखभाल कर सके। किशोर तिवारी अकेले यह लड़ाई लड़ रहे हैं। आईआईटी अहमदाबाद से पढ़े तिवारी 10 साल पहले जनरल इलेक्ट्रिक की एक मोटे तनखाह वाली नौकरी छोड़कर किसानों की सेवा में जुट गए। उन्होंने अब तक कई विधवाओं की बेटियों की शादियां कराई है। वह कहते हैं, “विधवाओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सरकार इनकी मदद नहीं करती। मैं आज भी उस परिवार की देखभाल कर रहा हूँ जिसके आदमी ने 1997 में इस इलाके में सबसे पहले आत्महत्या की।”

### **कर्ज का जाल**

किशोर तिवारी किसानों के बीच 10 साल से काम कर रहे हैं। वह कहते हैं “किसानों के आत्महत्या के प्रमुख कारण यह है कि किसानों को फसल के दाम नहीं मिल रहे हैं। उन्हें बैंकों से कर्ज नहीं मिलता और इस साल भी बहुत महंगाई थी और फसल कम हुई।” किसान कहते हैं जेनेटिकली मोडीफाई बीज आ जाने से उन्हें महंगे दर पर बीज खरीदना पड़ता है। इसके लिए उन्हें बैंक या साहूकार से पैसे लेने पड़ते हैं। इसके बाद खाद भी विदेशी मिलते हैं जिसके लिए उन्हें कर्ज लेना पड़ता है।

यहां तक कि कीटाणुओं को मारने की दवा के लिए भी उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। किसान कर्ज इस भरोसे पर लेते हैं कि फसल अच्छी हुई तो वह कर्ज चुकाने के बाद भी कुछ पैसे कमा सकते हैं। लेकिन समस्या उस समय खड़ी हो जाती है जब सूखा पड़ जाए या वर्षा न हो। इसके कारण वो कर्ज चुका नहीं पाते और अगर एक साल फसल खराब हुई तो इसका असर आने वाले सालों पर भी पड़ता है। कुछ किसानों के कर्ज

उनके पिता और दादा के समय से चले आ रहे हैं। प्रभुनाथ कहते हैं “हम लोगों को कर्ज चुकाने के लिए भी कर्ज लेने पड़ते हैं और कर्ज चुकाने में जितनी देर हो ब्याज उतना बढ़ता जाता है। जिसके कारण बैंक और साहूकार आपकी संपत्ति और खेत जब्त कर लेते हैं।”

बैंक से नोटिस और साहूकार की धमकी किसानों के लिए मृत्यु दंड से कम साबित नहीं होती। क्या है समाधान? किसान कहते हैं बैंकों के कर्ज माफ किए जाएं या कम से कम ब्याज माफ किया जाए और नए कर्ज आसान ब्याज दर पर दिए जाएं। लेकिन सरकार कहती है उसके पास पैसे नहीं। राज्य सरकार ने 10075 करोड़ रुपए के पैकेज की घोषणा दिसंबर में की थी, किसान कहते हैं वो पैकेज उन तक अब भी नहीं पहुंचा। लेकिन यह पैकेज भी काफी नहीं। विदर्भ के 32 लाख किसानों को सरकारी बैंकों ने चार हजार करोड़ से अधिक कर्ज दिए हैं। किसानों को 4000 करोड़ रुपए का पैकेज चाहिए, जो राज्य सरकार के बस की बात नहीं।



## हिंसा से समस्या का निदान कब तक

इराकी सरकार और विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण का कहना है कि पिछले तीन साल की हिंसा में लगभग एक लाख 51 हजार इराकियों की मौत हुई है। पूरे इराक में नौ हजार से ज्यादा घरों में सर्वेक्षण करके ये नतीजे निकाले गए हैं। सर्वे में कहा गया है कि अमरीकी हमले के बाद से युद्ध ही ज्यादातर ऐसे लोगों की मौत का कारण बना जिनकी उम्र 15 से 61 साल थी। कहा गया है कि इन एक लाख 51 हजार आम लोगों में से कम से कम आधे लोगों की मौत बगदाद में हुई। इस तरह की रिपोर्ट पहले भी आई हैं जिनके जरिए इराक पर अमरीकी फौजों के हमले के बाद वहां मारे गए लोगों की संख्या का अनुमान लगाने की कोशिश की गई है। कुछ रिपोर्टों में एक लाख चार हजार लोगों के मारे जाने की बात कही गई थी तो कुछ में ये संख्या दो लाख 23 हजार तक आंकी गई थी।

### पिछले आंकड़े

पिछले साल लैनसेट की ओर से एक रिपोर्ट आई थी जिसमें अस्पतालों के आंकड़ों के आधार पर छह लाख से भी ज्यादा आम लोगों के मारे जाने की बात कही गई थी। अमरीका, ब्रिटेन और इराक की सरकार ने इस रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया था। विश्व स्वास्थ्य संगठन की ताजा रिपोर्ट के एक लेखक डॉक्टर टाइस बोरमा ने भी सचेत किया है कि डेढ़ लाख लोगों के मारे जाने का ये आंकड़ा भी अनुमान पर आधारित है। डॉक्टर टाइस बोरमा का कहना था, “जैसे हालात हैं उनमें इस तरह के सर्वेक्षण के जरिए यथार्थ के इतने नजदीक ही पहुंचा जा सकता था। मरने वालों की ठीक-ठीक संख्या का तभी पता लग सकता है जब पंजीकरण की व्यवस्था काम करने लगे। लेकिन ऐसी व्यवस्था 2003 से ही मौजूद नहीं है।” ऐसी रिपोर्ट तैयार करते समय काफी खतरों

का सामना भी करना पड़ा। एक सर्वेयर का अपहरण कर लिया गया था और एक की गोली मार कर हत्या कर दी गई थी। हाल के महीनों में इराक में हिंसा कम होने की बात कही जा रही है रिकॉर्ड बताते हैं कि इस साल जनवरी के पहले 15 दिनों में 58 लोग मारे गए हैं और 144 लोग घायल हुए हैं।

### **‘आत्मदाह कर रही हैं अरगान महिलाएं’**

अफगानिस्तान में सक्रिय गैरसरकारी संगठनों के अनुसार देश में महिलाओं के आत्महत्या करने के मामले बढ़ रहे हैं। उनका कहना है कि दिन-प्रतिदिन यातनाएं सहने के कारण और जबरदस्ती शादी करवाए जाने से तंग आकर महिलाएं आत्महत्या कर रही हैं। इन संगठनों के अनुसार पूरी तरह आंकड़े जुटाना और स्थिति का आकलन करना मुश्किल है। लेकिन केवल राजधानी काबुल में ही खुद को आग लगाकर आत्महत्या करने वाली महिलाओं की संख्या पिछले साल के मुकाबले में दोगुना हो गई है।

काबुल में इस साल आत्मदाह के 36 मामले सामने आए हैं। पश्चिमी अफगानिस्तान के हेरात शहर में तो हर रोज इस तरह के मामले सामने आ रहे हैं। गैरसरकारी संगठन मेडिका मॉडिगल के प्रवक्ता ने बताया, “ये मामले युवाओं से संबंधित हैं और आत्मदाह करने वाली अधिकतर लड़कियां नौ से 40 साल के उम्र के बीच की हैं। वे ऐसा इसलिए कर रही हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके लिए अपनी समस्याओं से बाहर निकलने का और कोई रास्ता नहीं है।” हाल में मानवाधिकार संस्था ह्यूमन राइट्स वॉच ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि अफगानिस्तान में तालिबान को सत्ता से बेदखल करने के बाद से महिलाओं की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ है।

### **बढ़ रही है सामाजिक अशांति**

चीन के एक विचार मंच के विश्लेषण के अनुसार वहां सामाजिक अशांति बढ़ती जा रही है। चीन की सामाजिक विज्ञान अकादमी की रिपोर्ट का कहना है कि देश पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है। सामाजिक स्थिरता के राष्ट्रव्यापी अभियान के बावजूद अपराध बढ़ गए हैं। हालांकि चीन में निरंतर हो रहे आर्थिक

विकास के कारण बेरोजगारी कम हुई है। लेकिन वर्ष 2009 में चीन ने कहीं अधिक सामाजिक संघर्ष देखे। चीन के सामाजिक रुझानों पर आई यह रिपोर्ट देश के नीति निर्माताओं को गंभीर चेतावनी देती है। इस रिपोर्ट के लेखकों का कहना है पिछले कुछ दशकों में सरकारी अधिकारियों के अन्यायपूर्ण व्यवहार और सत्ता के दुरुपयोग को लेकर लोगों में आक्रोश बढ़ता जा रहा है। इस रिपोर्ट में छह बड़े विरोध प्रदर्शनों का जिक्र किया गया है, जिसमें हजारों लोगों ने हिस्सा लिया। इनमें पश्चिमोत्तर शिन्जियांग क्षेत्र में हुए साम्प्रदायिक दंगे शामिल नहीं हैं जिसमें कोई 200 लोग मारे गए थे।

### **शहरी-ग्रामीण अंतर**

इस रिपोर्ट का कहना है कि आपराधिक घटनाओं में भी वृद्धि हुई है। जनवरी से अक्टूबर के आंकड़े दिखाते हैं कि इस अवधि में 40 लाख आपराधिक मामले दर्ज किए गए जो पिछले साल की तुलना में 15 प्रतिशत अधिक है। रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया है कि चीन की कुछ नीतियां ऐसी रही हैं जिनकी वजह से देश के आर्थिक विकास का लाभ अधिक लोगों को नहीं मिल पाया है। उदाहरण के लिए शहरों और देहातों के लोगों की आमदनी में अंतर और गहरा हो गया है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में जो वृद्धि हुई है वह ग्रामीण आबादी, पर्यावरण और सामाजिक मेल मिलाप की कीमत पर हुई है। ये रिपोर्ट प्रशासन के इस नारे पर गंभीर प्रहार है कि वो एक 'समरसतापूर्ण समाज' का निर्माण कर रहा है। इस रिपोर्ट में आशा की एक किरण भी दिखाई देती है कि जहां एक तरफ चीनी प्रशासन प्रसार माध्यमों पर अपना शिकंजा कसता जा रहा है वहीं लोग इंटरनेट के माध्यम से अधिकारियों की कमियों और सत्ता के दुरुपयोग का पर्दाफाश अधिक कर रहे हैं। पिछले 12 महीनों में दस सबसे महत्वपूर्ण मामले इंटरनेट के जरिए सामने आए हैं।

### **पुलिस कानून से ऊपर**

दुनिया भर में मानवाधिकार उल्लंघन की घटनाओं पर नजर रखने वाली संस्था ह्यूमन राइट्स वाच का कहना है कि भारत की पुलिस अपने को कानून से ऊपर समझती है और पुलिस प्रणाली में सुधार के लिए बड़े कदम उठाने चाहिए। संस्था की रिपोर्ट में कहा है कि भारत की सरकारों

ने मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में पुलिस की जिम्मेदारी तय करने के अपने वादे पूरे नहीं किए हैं। ह्यूमन राइट्स की 118 पृष्ठों की रिपोर्ट में उन कई घटनाओं का जिक्र है, जिसमें पुलिस ने मानवाधिकार उल्लंघन किया है। इसमें प्रताड़ना, बिना कारण गिरफ्तारी और हिरासत में मौत जैसी घटनाएं शामिल हैं।

यह रिपोर्ट भारत के विभिन्न शहरों में कई पुलिस अधिकारियों द्वारा पुलिस प्रताड़ना का शिकार हुए लोगों, विशेषज्ञों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं से बातचीत के बाद तैयार की गई है। दिल्ली पुलिस के पूर्व आयुक्त अरुण भगत भी मानते हैं कि समस्या गंभीर है लेकिन वो इसके लिए राजनीतिक हस्तक्षेप को अधिक जिम्मेदार मानते हैं। भारत तेजी से आधुनिक हो रहा है लेकिन पुलिस अभी भी पुराने तरीकों से काम करती है। रिपोर्ट के अनुसार पुलिसवाले कानून की परवाह नहीं करते। पुलिसकर्मियों की संख्या कम है और उनके प्रोफेशनल मानदंड भी अच्छे नहीं हैं। ह्यूमन राइट्स वाच के एशिया निदेशक ब्रैड एडम्स कहते हैं, “भारत तेजी से आधुनिक हो रहा है लेकिन पुलिस अभी भी पुराने तरीकों से काम करती है। अब समय आ गया है कि सरकार बात करना बंद करे और पुलिस प्रणाली में सुधार किया जाए।

रिपोर्ट का कहना है कि जब तक पुलिसकर्मियों को चाहे वो किसी भी पद पर हों, मानवाधिकार उल्लंघन के लिए सजा नहीं दी जाएगी तब तक पुलिस कभी भी जिम्मेदार नहीं हो सकती है। अरुण भगत भी कहते हैं कि निचले पदों पर काम करने वाले पुलिसकर्मी जिन हालात में काम करते हैं वो उनके व्यवहार और काम के तरीकों पर प्रभाव डालता है। वो कहते हैं, “जो ऊपर के रैंक पर हैं उनका भविष्य बेहतर है लेकिन जो कांस्टेबल है, हैड कांस्टेबल है उनको कितने पैसे मिलते हैं, उसका क्या भविष्य है। उसका फ्रस्टेशन तो देखिए, उससे तो ये गलतियां होंगी ही, इसे बदलने की जरूरत है।”

रिपोर्ट के अनुसार कई बार पुलिसकर्मियों के पास जांच के लिए जरूरी सामान नहीं होता और ये एक बड़ा कारण है कि वो शार्टकट्स का इस्तेमाल करते हैं और मानवाधिकार का उल्लंघन होता है।

## औद्योगीकरण और हिंसा

भारत में औद्योगीकरण के नाम पर होने वाली हिंसा अक्सर अखबारों की सुर्खियां बटोरती रहती है। लेकिन इस हिंसा के पीछे की वजह कभी वास्तविक होती है तो कभी ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरीके की हिंसा प्रायोजित है। लेकिन इन हिंसक वारदातों की असलियत जानने के लिए आइए ऐसे ही कुछ हिंसक घटनाओं पर एक नजर डाल लेते हैं। पश्चिमी मिदनापुर जिले के नंदीग्राम में हुई हिंसा की घटना के विरोध में पश्चिम बंगाल के विपक्षी दलों ने अलग-अलग राज्यव्यापी बंद का आह्वान किया। इस बीच नंदीग्राम में तनाव को देखते हुए पुलिस ने वहां सुरक्षा बढ़ाने के साथ ही साथ वहां तक जाने वाले रास्ते बंद कर दिए। मिदनापुर जिले में प्रदर्शनकारियों ने पुलिस पर पथराव किया। इसके अलावा कई जगह से यातायात प्रभावित होने की खबरें भी मिली। नंदीग्राम में हुई झड़पों में कम से कम दो लोगों की जानें गई थी और कई अन्य घायल हो गए थे। उल्लेखनीय है कि नंदीग्राम में इंडोनेशिया की एक कंपनी को विशेष आर्थिक ज़ोन के लिए जमीन चाहिए और स्थानीय किसान इसका विरोध कर रहे हैं।

### बंद

इसके विरोध में बंद का आह्वान विभिन्न विरोधी दलों ने अलग-अलग किया। इसकी वजह से कोलकाता सहित पूरे राज्य के कई हिस्सों में यातायात प्रभावित हुआ। भूमि रक्षा प्रतिरोध कमेटी और कृषि जमीन रक्षा कमेटी संस्थाओं के नेतृत्व में किसान इस जमीन अधिग्रहण का विरोध कर रहे थे। बंद की शुरुआत दीनबंधुपुर में प्रदर्शनकारियों और पुलिस के बीच झड़प से हुई। एजेंसी का कहना है कि प्रदर्शनकारियों की पत्थरबाजी से कम से कम दस पुलिस वाले घायल हो गए। लोगों का कहना है कि पुलिस ने हवा में फायरिंग की। गुरुवार 15 मार्च 2007 को

कलकत्ता हाई कोर्ट ने पश्चिम बंगाल के नंदीग्राम में पुलिस फायरिंग की सीबीआई से जांच कराने का आदेश दिया। इस बीच नंदीग्राम में ग्रामीणों और पुलिस के बीच ताजा झड़पें हुईं। पुलिस ने उग्र प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज किया और पत्रकारों पर भी फायरिंग की। बुधवार 10 जनवरी 2007 को रासायनिक फैक्ट्री लगाने का विरोध कर रहे ग्रामीणों पर हुई पुलिस फायरिंग में 14 लोग मारे गए थे। पुलिस का कहना है कि हजारों गांव वाले उन पर हमला कर रहे थे।

पश्चिम बंगाल के सिंगूर इलाके में छोटी कारों का एक कारखाना स्थापित किए जाने के विरोध में मुख्य विपक्षी पार्टी नेता सड़कों पर उतर आईं। पार्टी के अन्य नेताओं के साथ कोलकाता में विरोध-प्रदर्शन किया और सड़कें जाम करने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि कारखाना लगाने के निर्णय का हर स्तर पर विरोध किया जाएगा। वजह यह है कि इस कारखाने के लिए साढ़े तीन हजार से भी अधिक किसानों की जमीन ली जा रही है और विरोध करने वालों का कहना है कि किसानों के विस्थापन की कीमत पर कारखाना नहीं लगने दिया जाएगा। छोटी कारों का यह कारखाना देश के एक बड़े औद्योगिक घराने टाटा समूह की तरफ से लगाया जा रहा था। वाम नेतृत्व वाली पश्चिम बंगाल सरकार के इस कारखाने को स्वीकृति देने का विपक्षी राजनीतिक दल विरोध कर रहे हैं और यह मुद्दा अब राजनीतिक रंग लेता नजर आने लगा था। पार्टी ने कारखाना लगाने के विरोध में नौ अक्टूबर को पूरे राज्य में हड़ताल की घोषणा की।

## **फैसला सही**

सत्ताधारी वाम मोर्चे ने ममता बैनर्जी के इस विरोध को गलत ठहराया। राज्य सरकार ने अपने इस निर्णय से पीछे हटने से इनकार कर दिया। उधर प्रस्तावित कारखाने के लिए जिन 3600 किसानों से जमीन ली गई। उनमें से अधिकतर ने सत्ताधारी सरकार से मुआवजा लेने से इनकार कर दिया। सिंगूर में जिला प्रशासन की ओर से जब मुआवजे के चेक बांटे जा रहे थे तो जमीन के मालिकों ने चेक लेने से इनकार कर दिया और विरोधी दल के कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर विरोध प्रदर्शन किया। विरोध-प्रदर्शन को खत्म करने के लिए जिला प्रशासन को पुलिस बल का इस्तेमाल करना पड़ा।

बुधवार, 27 सितंबर, 2006 को पश्चिम बंगाल के हुगली जिले का

यह अनाम-सा कस्बा सिंगूर टाटा समूह की छोटी कार परियोजना और उसके विरोध के कारण अचानक सुर्खियों में आ गया।

लेकिन इससे अनेक किसानों को कोई परेशानी नहीं है, जिनको इस सप्ताह अपनी जमीन के बदले राज्य सरकार से लाखों रुपए के चेक मिले हैं। उनके लिए इस पैसे को सहेजना भी कोई आसान काम नहीं है। अनंत पाखिरा, विप्लव चंद्र और राधिका मंडल जैसे सैकड़ों लोगों ने अब तक यह सोचा भी नहीं है कि वे आखिर इस पैसे का क्या करें? अब तक गांव के किसी व्यक्ति का बैंक में खाता भी नहीं था। लेकिन अब खाता खुलवाने की होड़ लग गई। यही नहीं, लोगों को इस रकम के निवेश की मुफ्त सलाह देने वाले कुछ कमीशन एजेंट भी यहां सक्रिय हो गए हैं। अब तक यहां सिर्फ इलाहाबाद बैंक की एक शाखा थी लेकिन अब दूसरे बैंक भी यहां आने की तैयारी कर रहे हैं। अनंत कहते हैं, “मेरे पास सरकार को जमीन देने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इसके अलावा कीमत अच्छी मिल रही है और घर से एक व्यक्ति को टाटा मोटर्स कारखाने में नौकरी देने का भी प्रस्ताव है।” वे कहते हैं, “अब तक बैंक में मेरा खाता नहीं था। इतने पैसे ही नहीं थे कि बैंक में रखने की नौबत आती। लेकिन अब मैंने भी खाता खोल लिया है।” वे इन पैसों से एक दुकान खोलने की योजना बना रहे हैं।

## रातों रात

इलाहाबाद बैंक की सिंगूर शाखा के प्रबंधक कहते हैं कि “लोगों को अचानक बहुत पैसे मिल गए हैं। इन पैसों और टाटा की परियोजना को ध्यान में रखते हुए कुछ कार और इलेक्ट्रॉनिक कंपनियां भी इलाके में शो रूम खोलने की योजना बना रही हैं।”

पर्यवेक्षक कहते हैं कि विपक्षी पार्टी के पास अपने कमजोर होते संगठन में जान फूंकने के लिए एक मुद्दे की तलाश थी। अब वे जमीन के सहारे अपनी राजनीति चमकाने में सफल रही।

प्रमुख राजनीतिक दलों के समर्थन से उनका उत्साह और बढ़ गया है लेकिन क्या सिंगूर के लोग उनके साथ हैं? इस सवाल का जवाब उतना आसान नहीं है। क्या सिंगूर के किसानों को टाटा के यहां से खाली हाथ लौट जाने से फायदा होगा। यह कुछ ऐसे सवाल है जिनका जवाब वक्त के साथ दुनिया के सामने आएगा।

किसानों का अधिकार है कि वो अपनी जमीन को उचित कीमत पर बेचें। लेकिन कारोबार जगत ने किसानों को निशाना बनाया हुआ है। उद्योगपति उस जमीन पर क्यों नहीं उद्योग लगाते, वे सबसे उपजाऊ जमीन को ही क्यों खरीदना चाहते हैं। सरकार जमीन का अधिग्रहण करती है। जैसे दादरी में 150 रुपए गज पर किसानों की जमीन को खरीदा गया और खेतिहर जमीन को औद्योगिक कामों में लगाने की मंजूरी दी गई और इसका बाजार भाव 5700 रुपए हो गया। इस जमीन में एक पत्थर भी नहीं लगा तो फिर क्यों इसकी कीमत इतनी हो गई। जब इस संयंत्र से बिजली तैयार होगी तो उसकी कीमत बाजार के हिसाब से तय होगी, लोहा गिट्टी सब बाजार की कीमत से खरीदा जाएगा तो फिर किसान को क्यों नहीं बाजार की कीमत मिलनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने पश्चिमी जिले बुलंदशहर के दादरी इलाके में किसानों की जमीन काफी कम कीमतों में रिलायंस को दी थी। दो साल पहले गाजे-बाजे के साथ रिलायंस के अनिल अंबानी और उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए एक बड़ी परियोजना का शिलान्यास किया था। दो साल में बिजली उत्पादन का वादा किया गया था।

### सवाल या स्वार्थ

सरकार और राजनेता आर्थिक विकास की दुहाई दे रहे हैं और इस विरोध के पीछे प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक ताकतों का हाथ बताते हैं। यहां सवाल सिर्फ मुआवजे और जमीन का ही नहीं लगता। सरकार आठ फीसदी की आर्थिक विकास दर पाने और पूंजी निवेश आकर्षित करने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) बना रही है। इनके पीछे धारणा यह है कि यहां अंतरराष्ट्रीय स्तर की सुविधाएं मुहैया कराई जा सकें और निर्यात को बढ़ावा मिल सके। देश के कई हिस्सों में तो सरकार ने ऐसे 42 एसईजेड बनाने की मंजूरी दे दी है, जिसमें गाजियाबाद और नोएडा भी शामिल हैं। इसके लिए सरकार हजारों एकड़ जमीन दे रही है, जिसकी वहज से लाखों किसान विस्थापित हो रहे हैं। दूसरी तरफ किसान यह भी सवाल कर रहे हैं कि विकास के लिए यह कीमत क्या वाजिब है? क्या विकास के लिए और विकल्प नहीं हैं? क्या राजनीतिक नेता व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए ये विकल्प ढूंढ रहे हैं? ये बहस बड़े-बड़े खुर्द में ही नहीं बल्कि पूरे देश में छिड़ी हुई है।



## हिंसा का बदलता स्वरूप

यूनिसेफ के अनुसार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे भारी प्रयासों के बाद भी दुनिया भर में हर साल 50 करोड़ से लेकर डेढ़ अरब बच्चे विभिन्न प्रकार की हिंसा का शिकार हो रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष यूनिसेफ की दुनिया के बच्चों की स्थिति रिपोर्ट के विशेष संस्करण के अनुसार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे भारी प्रयासों के बाद भी दुनिया भर में बच्चे हिंसा के शिकार हो रहे हैं।

रिपोर्ट के अनुसार “विभिन्न प्रकार की हिंसा और अत्याचार के शिकार इन बच्चों को भविष्य में मानसिक और शारीरिक समस्याओं से जूझना पड़ता है।” रिपोर्ट में कहा गया है “बच्चों के हितों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाने वाली प्रथाएं सामाजिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का भाग होती हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी विद्यमान रहती हैं। अतः केवल कानून पारित कर देना ही काफी नहीं होता है।” इनको सतत शैक्षिक एवं जागरूकता प्रयासों, क्षमता निर्माण, पर्याप्त संसाधनों, परस्पर सहयोग तथा बच्चों की भागीदारी का समर्थन होना चाहिए। यह विशेष रूप से तभी लागू होता है जब बच्चों को हिंसा, दुर्व्यवहार और शोषण के बचाने की बात सामने आती है। “रिपोर्ट के अनुसार हर देश एवं समुदाय, सांस्कृतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक समूह में बच्चे हिंसा, दुर्व्यवहार, शोषण, उपेक्षा और भेदभाव के शिकार होते हैं। इस प्रकार के उल्लंघन बाल अधिकारों में रूकावट पैदा करते हैं। बाल अधिकार सम्मेलन के अनुच्छेद 19 में कहा गया है कि सभी सदस्य देशों को बच्चे की शारीरिक अथवा मानसिक हिंसा, उपेक्षा, शोषण के साथ साथ यौन दुर्व्यवहार से रक्षा के लिए उचित कानून, प्रशासनिक, सामाजिक एवं शैक्षिक उपाय करने होंगे। भले ही बच्चे की देखभाल इस दौरान अभिभावकों अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जा रही हो।” इस प्रकार के सुरक्षाकारी उपाय हर प्रकार से उपयुक्त और बच्चे के लिए उपयोगी

होने चाहिए। रिपोर्ट में कहा गया है कि शारीरिक रूप से असमर्थ बच्चे भेदभाव और अकेलेपन के शिकार होने के साथ-साथ विशेष रूप से शारीरिक हिंसा एवं भावनात्मक तथा मौखिक दुर्व्यवहार का शिकार होते हैं, जिसके कारण बच्चों की स्कूलों में उपस्थिति भी प्रभावित होती है।

### **शिक्षा : बदलते आयाम**

जिन दिनों मैं स्कूल में पढ़ने जाता था तो उस समय शिक्षा में ट्यूशन जैसी कोई बात नहीं थी और तब आज की तरह कोचिंग सेंटर नहीं होते थे। शिक्षक ट्यूशन पढ़ाते ही नहीं थे। वे कक्षाओं में ही इतने अच्छे ढंग से समझाते थे कि किसी को ट्यूशन करने की जरूरत ही नहीं होती थी। आज उस तरह के शिक्षक नहीं हैं। मुझे लगता है कि यह शिक्षा और शैक्षिक परिवेश में आया एक बहुत बड़ा बदलाव है। पहले ऐसे लोग ही राजनीति में आते थे जिन्हें जनता की सेवा करनी होती थी और वे बाकायदा पढ़े-लिखे भी होते थे। तब कोई भी नेता राजनीति को व्यापार की नजर से नहीं देखता था। समय के साथ लोगों की मानसिकता में बदलाव भी आया है। इससे लगता है कि सामाजिक चेतना लुप्त हो गई है और समाज में विकृति आ गई है। अब जबकि हम आजादी के साठ साल पूरे कर चुके हैं तो हमें सामाजिक मुद्दों पर भी उतना ही जोर देने की जरूरत है, जितना जोर हम आधारभूत संरचना पर देते हैं।

### **पढ़ाई अब ज्ञान नहीं, रोजगार के लिए**

अब छात्र ज्ञान हासिल करने की बजाए ऐसे विषय लेना चाहता है जिसके जरिए उसे रोजगार प्राप्त हो सके। अब पढ़ाई ज्ञानोन्मुखी न होकर रोजगारोन्मुखी रह गई है लेकिन इस तरह का बदलाव कोई गलत परिवर्तन नहीं है। हालांकि इसके चलते छात्र और शिक्षकों के संबंधों में जो परिवर्तन आया है वह जरूर गलत है। विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है भारत में काफी विकास हुआ है। मसलन पहले हम लोग बांस से कलम बनाते थे और उससे लिखते थे। उस समय कलम महंगी होती थी और खरीदना कठिन होता था। अब मामूली दामों में कलम मिल जाती है। आज हमने तकनीक, विज्ञान, कॉमर्स के क्षेत्र में खासी तरक्की हासिल की है। इनसे संबंधित अच्छे पाठ्यक्रम कई कॉलेजों में पढ़ाए जा रहे हैं पर साथ ही कला, साहित्य, भाषा और सामाजिक अध्ययन से जुड़े

विषयों के प्रति नई पीढ़ी की रुचि घटी है जो चिंताजनक है।

### **पांव पसार रहा है भ्रष्टाचार**

हाल में विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में सालाना 210 अरब रुपए रिश्वत में दिए जाते हैं। एशिया के भ्रष्ट देशों की सूची में भारत नौवें स्थान पर है तो विश्व के 158 देशों की सूची में भारत 88 वें स्थान पर है। भारत में भ्रष्टाचार की चर्चा जितनी चाहे हो चुकी हो फिर भी ये आंकड़े चौंका देते हैं। सुनकर लगता है मानो पूरे देश ने भ्रष्टाचार के सामने घुटने ही टेक दिए हों। समाजशास्त्री प्रोफेसर अरुण कुमार मानते हैं कि काले धन की समस्या इससे कहीं ज्यादा विकराल है। उनका कहना है कि 1995 में अनुमान लगाया गया था कि सार्वजनिक क्षेत्र में 55 हजार करोड़ रुपए के भ्रष्टाचार की वजह से नुकसान हो जाता है। अगर ये आंकड़े सही हैं तो यह भी सही है कि जितनी रिश्वत दी जाती है उसे अगर विकास के कार्यों में लगाया जाए तो देश के पिछड़े इलाकों का नक्शा बदल सकता है। अगर यह रकम गरीबों में बांट दी जाए तो राष्ट्रीय स्तर पर गरीबों की संख्या मौजूदा संख्या के आधी रह जाएगी। अगर ऐसा हो गया तो भारत का सामाजिक परिदृश्य बदल जाएगा। जाहिर इससे लोगों की समस्याओं का सही समय पर हल निकल जाएगा। उन्हें अपनी समस्याओं के लिए हिंसा का सहारा नहीं लेना पड़ेगा। यानि वैध समस्याओं के निदान के लिए हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति पर काबू पाने में काफी मदद मिलेगी।

### **विकट समस्या**

अगर एक समस्या के हल से इतनी समस्याएं हल हो सकती हैं तो क्या वजह है कि इसकी रोकथाम नहीं हो पाती। क्यों फलफूल रहा है भ्रष्टाचार भारत में। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल संस्था से जुड़े मुंबई उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश चंद्रशेखर धर्माधिकारी कहते हैं कि हम इसके प्रति इतने उदासीन हो गए हैं कि भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया है। भ्रष्टाचार क्या देश की सांस्कृतिक सच्चाई बन गया है या इसके दूसरे कारण भी हैं। भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली के प्रोफेसर आनंद प्रधान मानते हैं कि देश में लोकतंत्र की परिपक्वता की कमी की वजह से भ्रष्टाचार फैल रहा है। जाहिर सी बात है लोकतंत्र की जड़ें और

कमजोर करने में भी भ्रष्टाचार की बड़ी भूमिका होती है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार 40 प्रतिशत न्यायिक मामले रिश्वत के बल पर प्रभावित किए जाते हैं और भ्रष्ट सरकारी तबकों में पुलिस सबसे ऊपर है। यह समझने के लिए किसी अर्थशास्त्री की जरूरत नहीं है कि गरीबी और गरीबों का एक सबसे बड़ा दुश्मन भ्रष्टाचार ही है जो उसे रोटी से, अवसरों से और अधिकारों से कोसों दूर रखता है। सूचना के अधिकार जैसे कानूनों से कुछ मदद तो मिलेगी लेकिन भ्रष्टाचार के निर्मूलन के लिए शायद सामाजिक परिवर्तन की जरूरत है।

### **हर साल 10 खरब रुपए की रिश्वत**

संयुक्त राष्ट्र 09 दिसंबर, 2004 को 'भ्रष्टाचार विरोध दिवस' मनाता है। विश्व बैंक के अनुसार दुनिया में हर साल लगभग 10 खरब रुपए की रिश्वत दी जाती है। रिश्वतखोरों और भ्रष्ट नेताओं और अफसरों से लोग कितने प्रभावित हैं ये देखने के लिए भ्रष्टाचार विरोधी संगठन 'ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल' ने एक अध्ययन भी प्रकाशित किया है। 'ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल' ने दुनिया के 64 देशों के पचास हजार लोगों से भ्रष्टाचार के बारे में पूछा। इनमें दस में से एक व्यक्ति ने कहा कि पिछले एक साल में उनके परिवार के कम से कम एक व्यक्ति को अपना काम करवाने के लिए रिश्वत देनी पड़ी। पांच देश ऐसे थे जिनमें एक-तिहाई लोगों ने कहा कि पिछले एक साल में उनके परिवार के लोगों को रिश्वत देनी पड़ी है। ये देश हैं नाइजीरिया, कीनिया, लिथुएनिया और मॉल्डोवा।

### **नेताओं से परेशान भारतीय**

भारत, अर्जेंटीना, इक्वेडोर और पेरू सहित कई देशों में लोग परेशान हैं भ्रष्ट राजनेताओं और राजनीतिक दलों से। भारत में लोगों के मुताबिक नेताओं और पार्टियों के बाद नंबर आता है अदालतों, पुलिस और सीमा शुल्क अधिकारियों का। भारतीय लोगों की नजर में इन क्षेत्रों की तुलना में जहां भ्रष्टाचार कुछ कम है वो हैं निजी कंपनियां, मीडिया और गैर सरकारी संस्थाएं। दिलचस्प बात ये है कि इन सबमें सबसे कम भ्रष्ट मानी जाती है भारतीय सेना।

## पुलिस से तंग पाकिस्तानी

उधर पाकिस्तान के लोगों के बारे में अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वहां लोग सबसे ज्यादा नाराज हैं भ्रष्ट पुलिस महकमे से । उसके बाद नंबर आता है भ्रष्ट राजनेताओं और राजनीतिक दलों का, कर अधिकारियों का। लेकिन पाकिस्तान में सेना को भी कुछ हद तक भ्रष्ट माना जाता है। भारत और पाकिस्तान में लोग शिक्षण संस्थाओं को भी भ्रष्टाचार में लिप्त मानते हैं। क्या भ्रष्टाचार की इस घोर अंधेरी रात की सुबह लोगों को नजर आती है? क्या आने वाले तीन वर्षों में भ्रष्टाचार में कमी आ सकती है?

इस सवाल के जवाब में जहां पाकिस्तान के लोग कुछ आशावादी नजर आते हैं, वहीं भारत के जिन लोगों से बात की गई उनमें से लगभग आधे लोगों ने निराशा ही व्यक्त की। जर्मनी की एक प्रतिष्ठित संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के मुताबिक विश्व के दो तिहाई से ज्यादा देशों में भयानक भ्रष्टाचार फैला हुआ है। इनमें बांग्लादेश सबसे ज्यादा और फिनलैंड सबसे कम भ्रष्ट देश आंके गए हैं। कम भ्रष्ट देशों के क्रम में भारत का 71वां और पाकिस्तान का 77वां नंबर है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल एक गैर सरकारी संगठन है जो सरकारी संगठनों के कामकाज में पारदर्शिता की हिमायत करता है। भारत भ्रष्टाचार की इस सूची में 71वें नंबर पर है यानी दुनिया के दस सबसे कम भ्रष्ट देशों में तो भारत का नाम नहीं है। जर्मनी की संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने 102 देशों में सर्वे करवाने के बाद भ्रष्टाचार के बारे में यह सूची जारी की है। संगठन ने कहा है कि इंडोनेशिया, कीनिया, अंगोला, मेडागास्कर, पारागुए, नाइजीरिया और बांग्लादेश में भ्रष्टाचार व्यापक है। संगठन के अध्यक्ष पीटर ऐगन ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में बताया कि पिछले वर्षों में जनतांत्रिक शासन प्रणाली की साख को झटके लगे हैं। फौजी शासन से उबरे दक्षिण अमरीका के कई देशों में रिश्वत के बोलबाले और राजनीतिक नेताओं के व्यवहार से जनतांत्रिक मूल्यों को चोट लगी है। इस सर्वे के मुताबिक एक से दस के पैमाने पर बांग्लादेश को 1.2 अंक मिले हैं और वह सबसे नीचे जा पहुंचा है, जबकि भारत को 2.7 अंक मिले हैं। इस सूची में पाकिस्तान को भारत से ज्यादा भ्रष्ट माना गया है लेकिन दोनों देशों के बीच ज्यादा दूरी नहीं है। पाकिस्तान का नंबर ठीक भारत के बाद आता है। हालांकि कुछ

समय पूर्व कम्युनिस्ट देशों में बेहतरी के संकेत भी नजर आए हैं। स्लोवेनिया को जहां पिछले सर्वे में 6 अंक मिले थे, इस सर्वे में उसे 5.2 अंक मिले हैं। यानी वहां भ्रष्टाचार में कुछ कमी आने के संकेत मिले हैं।

## सामाजिक हिंसा बनाम नक्सलवाद

भारत के अलग-अलग हिस्सों में पिछले एक दशक के दौरान हिंसक वारदातों में आई तेजी ने सरकार और सुरक्षा बलों को परेशानी में डाल रखा है। लेकिन इसकी मूल वजह आजादी के बाद से ही उन इलाकों में रहने वाले लोगों की उपेक्षा है, जिसने उन्हें अपने अधिकारों की खातिर हथियार उठाने को मजबूर किया है बेशक ये तरीका न सिर्फ गलत है बल्कि हमारा समाज और कानून भी इसकी इजाजत नहीं देता है। लेकिन बावजूद इसके भारत के तकरीबन एक दर्जन राज्यों में हिंसा और तोड़फोड़ के नाम पर आंदोलन चलाया जा रहा है। इसे नक्सल आंदोलन के नाम से जाना जाता है। लेकिन यहां एक सवाल गौर करने लायक है कि अपने अधिकारों की खातिर सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुंचाना और निर्दोष व्यक्ति के खून से जमीन को लाल कर देना कहां का इंसाफ है। नक्सली हिंसा में 1,128 लोगों की मौत हो चुकी है जिसमें से 455 सुरक्षाकर्मी हैं और बाकी आम लोग। पुलिस के अभियान में अब तक 107 नक्सली मारे गए हैं और 851 गिरफ्तारियां हो चुकी हैं। हाल ही में दंतेवाड़ा में नक्सलियों के हमले में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के 76 जवान शहीद हो गए। उल्लेखनीय है कि देश में पिछले कुछ वर्षों में नक्सली हिंसा में बहुत तेजी आई है। इसे देखते हुए अब नक्सलियों के खिलाफ कार्रवाई में सेना को लगाए जाने की बात पर चर्चा होने लगी है लेकिन अभी इस बात पर राजनीतिक दलों और सरकार के भीतर भी आमराय नहीं बन पाई है। आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल और बिहार में नक्सली हिंसा का एक इतिहास रहा है और आंध्र को छोड़कर बाकी राज्यों में हिंसक घटनाओं में बढ़ोत्तरी ही हुई है।

इन राज्यों में गरीबी और आम लोगों के शोषण को नक्सली हिंसा से जोड़कर देखा जाता है। लेकिन पहली बार सरकार ने पंजाब और उत्तराखंड जैसे संपन्न राज्यों में नक्सली गतिविधियों की जानकारी दी है,

जो एक गंभीर मसला बन सकता है। इन्हीं समस्याओं पर गंभीरता से विचार करने की खातिर 17 अगस्त 2009 को केंद्र सरकार की पहल पर एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस मौके पर गृह मंत्री ने कहा कि आंतरिक सुरक्षा मजबूत बनाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर काम करेंगी। इसी मुद्दे पर राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन को संबोधित करते हुए गृह मंत्री ने कहा कि देश के पूर्वोत्तर के कुछ राज्य अलगाववाद के सामने कई बार झुक जाते हैं जिसकी वजह से वहां अलगाववाद की समस्या से निपटने में मुश्किलें पैदा होती हैं। नक्सल प्रभावित क्षेत्रों का जिक्र करते हुए मंत्री जी ने कहा कि नक्सलवाद की समस्या से निपटने के लिए “हम बात करेंगे, काम करेंगे और विकास की गतिविधियां चलाएंगे।” गृहमंत्री ने देश में नक्सल समस्या से निपटने के लिए सरकार की दोतरफा नीति की घोषणा भी की। अपनी इस नीति पर प्रकाश डालते हुए गृहमंत्री ने कहा कि पहले नक्सल प्रभावित क्षेत्र को नक्सलियों से मुक्त किया जाएगा और फिर वहां विकास के काम कराए जाएंगे। पिछले साल नवंबर में मुंबई पर हुए हमले का जिक्र करते हुए गृहमंत्री ने कहा, “हालांकि उसके बाद से देश में कोई भी आतंकवादी हमला नहीं हुआ है लेकिन इसका मतलब ये नहीं निकाला जाना चाहिए कि आतंकवाद का खतरा कम हो गया है या खत्म हो गया है।”

उन्होंने कहा कि केंद्र सरकार ने राज्यों को सलाह दी है कि वो केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल की तर्ज पर ही राज्य औद्योगिक सुरक्षा बल गठित करें। गृहमंत्री का कहना था कि इस तरह के सुरक्षा बल के बहुत फायदे हैं और वो चाहेंगे कि इस सलाह पर राज्य सरकारें उन्हें अपनी प्रतिक्रिया दें। गृहमंत्री का कहना था कि “हम राज्य सरकारों को उत्साहित करेंगे कि वो नक्सलियों से बात करें - निजी तौर पर और स्थानीय इकाइयों के तौर पर भी, जिससे कि वो मुक्ति के लिए अपनाए गए सशस्त्र संघर्ष का रास्ता छोड़ दें।” जम्मू कश्मीर में चरमपंथी गतिविधियों का जिक्र करते हुए गृहमंत्री का कहना था कि वहां परिस्थिति में प्रत्यक्ष सुधार आया है। राजनंदगांव की घटना पर जब मुख्यमंत्री रमन सिंह ने बयान दिया कि नक्सलियों के खिलाफ अब निर्णायक लड़ाई का वक्त आ गया है इस बीच पुलिसकर्मी लगातार नक्सली हिंसा का शिकार हो रहे हैं और अब तो एक पुलिस अधीक्षक भी इस हिंसा की चपेट में आ गए हैं। पुलिस महानिरीक्षक मुकेश गुप्ता भी इस नक्सली घेराबंदी में



आ गए थे लेकिन बाल-बाल बच गए। उन्होंने बयान दिया है कि नक्सलियों से निपटने के लिए घटनास्थल पर उनके पास पर्याप्त बल की कमी थी। दिल्ली में नक्सल मामलों के जानकार पी.वी. रमन्ना का कहना है कि सवाल सिर्फ बल का नहीं है बल्कि रणनीति और दूरदर्शिता का है जिसकी कमी की वजह से छत्तीसगढ़ और देश के अन्य राज्यों के पुलिसकर्मी भी माओवादियों का आसान शिकार बन रहे हैं।

उनका कहना है कि ऐसे हमलों के समय किस तरह की प्रतिक्रिया होनी चाहिए इसके लिए पुलिस के पास एक ठोस कार्य योजना है जिसे पुलिसकर्मी अक्सर अपनाने से चूक रहे हैं। राजनंदगांव की घटना में सुबह-सुबह नक्सलियों ने मंदवाडा पुलिस चौकी से नित्य क्रिया के लिए जंगल को गए पांच पुलिसवालों में से दो को मार दिया। उनका कहना है कि अधिकारियों को उसी वक्त सोचना चाहिए था कि जब पांचों के पांचों पुलिसकर्मियों को गोलियों का शिकार बनाया जा सकता था तो दो को ही क्यों मारा गया? बाद में अलग-अलग पुलिस पार्टियां चौकी की मदद को गयीं और माओवादियों की चाल का शिकार बनी और आधिकारिक सूचना के अनुसार एक पुलिस अधीक्षक सहित 21 पुलिस वालों ने अपनी जान गंवाई।

आंध्र प्रदेश में विशेष तौर पर तैयार की गयी नक्सल विरोधी पुलिस, ग्रे-हाउंड, की नक्सलियों के खिलाफ आपरेशन को हाल के मुहिमों में सबसे सफल माना जाता है इस दस्ते ने विद्रोहियों द्वारा बार-बार पुलिस वाहनों पर किये जाने वाले हमलों के बाद पहले मोटरसाइकिल और फिर गश्त और हमलों के लिए पैदल जाना शुरू कर दिया। रूचिर गर्ग, जिन्होंने मध्य भारत में इस समस्या पर पैनी नजर रखी है, का कहना है पुलिस को छापामार युद्ध करने वालों के अंदाज में सोचना होगा और अपनी इस मुहिम को पारंपरिक आपरेशन से अलग ढंग से चलाने की कोशिश करनी होगी।

छत्तीसगढ़ में कई ऐसी घटनाएं हुई हैं जिसमें पुलिस के जवान पैदल जाने की बजाए जीप किराए पर लेकर सफर करते हैं या फिर एंटीलैंडमाइन वाहन में जगह से ज्यादा लोग सवार हो जाते हैं। नक्सलियों ने उसे बारूदी सुरंग लगाकर उड़ा दिया है कई बार तो लाशों के पास बिछाई बारूद से पुलिस वालों को भारी क्षति पहुंची। अविभाजित मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ पहले मध्य प्रदेश का ही अंग था) के पूर्व पुलिस महानिरीक्षक

ए.एन. सिंह राज्य में बढ़ रही नक्सली गतिविधियों और पुलिस का हिंसा के चपेट में आ जाने को नेतृत्व की कमी मानते हैं। उनका कहना है, “बड़े अधिकारियों को आपरेशन के समय और उसके पहले भी जंगलों में जाकर जवानों के साथ समय बिताना होगा तभी फोर्स के भीतर नेता से जुड़े होने की भावना पैदा होगी।”

वो छत्तीसगढ़ और दूसरे नक्सल प्रभावित राज्यों के पुलिस कर्मियों को जंगल में युद्ध लड़ने और गुरिल्ला पद्धति यानी छापामार युद्ध में प्रशिक्षित किये जाने की सलाह देते हैं। उनका कहना है कि इसके लिए बेहतर होगा कि माओवादी प्रभावित इलाकों से ही कम उम्र के लड़कों को लाकर उन्हें शिक्षा और फिर पुलिस ट्रेनिंग दी जाए। वह कहते हैं कि नक्सलियों की तेज हुई गतिविधियों को माओवादियों की नई रणनीति के तौर पर भी देखे जाने की जरूरत है। उनका कहना है, “इसके तहत वो यह जताना चाह रहे हैं कि भारत सरकार ने भले ही हमारे संगठन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) को प्रतिबंधित कर दिया हो, लेकिन हम अपनी इच्छाशक्ति से जब चाहें किसी पर, कहीं भी हमले कर सकते हैं।”

मध्य प्रदेश पुलिस के एक उच्च अधिकारी का इसी से जुड़े एक पहलू पर कहना है कि इस समस्या से लड़ने में अभी भी समन्वय की कमी है और सब राज्य अपनी लड़ाई अलग लड़ रहे हैं। भोपाल में नक्सलियों की एक हथियार बनाने वाली फैक्ट्री के मामले का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि जब गुजरात प्रशासन को इसकी खबर दी गयी कि हथियार बनाने वाले मशीन की सप्लाई सूरत और आसपास के इलाके से हुई है तो उन्होंने ये कहकर आगे की कार्रवाई करने से इंकार कर दिया कि उनके यहां नक्सलवाद की समस्या नहीं है। यह तो सभी मानते हैं कि नक्सलवाद जैसी समस्या का हल पुलिस कार्रवाई नहीं बल्कि एक सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया से ही संभव है। लेकिन छत्तीसगढ़ के हालात कुछ ऐसे हैं कि कल जब वहां हमला हुआ तो राज्य के गृह मंत्री ने बयान दिया कि उन्हें इस मामले की ज्यादा जानकारी नहीं है। बल्कि उन्होंने यहां तक कहा, “जब क्षेत्र में नक्सली इस घटना की योजना बना रहे होंगे तब पुलिस महानिदेशक साहित्य सम्मेलन में व्यस्त थे।”

उनके इस बयान से हंगामा तो खासा मचा है लेकिन गृह मंत्री और पुलिस महानिदेशक के बीच की ये दूरी काफी कुछ कह जाती है।

छत्तीसगढ़ के राजनंदगांव इलाके में हुए एक नक्सली हमले में 29 पुलिसकर्मी मारे गए। इस हमले के बाद मुख्य मंत्री ने इस लड़ाई में फिलहाल सेना को शामिल किए जाने की संभावनाओं से इंकार किया है। उन्होंने कहा है कि वह इस मामले में केंद्र सरकार से अर्ध सैनिक बलों और पुलिस की बेहतरी के लिए बेहतर आर्थिक मदद की मांग करेंगे। लेकिन फिलहाल नक्सली विरोधी मुहिम में सैनिक अभियान की बात नहीं सोची जानी चाहिए।

राजनंदगांव में हुए नक्सली हमले के बाद पुलिस ने मृतकों, घायलों और संदिग्ध विद्रोहियों की तलाश में महाराष्ट्र की सीमा से लगे इस इलाके की सघन छानबीन भी की। लेकिन सफलता उनसे दूर ही रही। पुलिस ने सभी 29 पुलिसकर्मियों के शव बरामद कर लिए। अब तक किसी नक्सली की लाश पुलिस के हाथ नहीं लगी है। राजनंदगांव के मारे गए पुलिस अधीक्षक का नाम विनोद कुमार चौबे था। पुलिस महानिरीक्षक मुकेश गुप्ता ने कहा कि नक्सलियों का यह हमला पुलिस द्वारा उनके खिलाफ तेज की गई मुहिम की बौखलाहट के तौर पर किया गया है।

पुलिस ने हाल में ही जिले के नक्सल प्रभावित इलाके में तीन नई पुलिस चौकियां खोलने के साथ ही इलाके की गश्त भी तेज कर दी थी। माओवादियों ने अपनी पहली वारदात इन्हीं में से एक पुलिस चौकी, मदनवाडा में की जहां उन्होंने दो पुलिस वालों को मार डाला। बाद में जीप और मोटरसाइकिलों पर सवार होकर चौकी की मदद को जा रहे दो पुलिस दलों पर तकरीबन दो से तीन सौ माओवादियों ने पहले तो बारूदी सुरंगों को उड़ाकर हमला किया और फिर उन पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। दोनों पक्षों में यह गोलाबारी घंटों चली मगर पुलिस अधीक्षक के साथ मौजूद दल नक्सलियों के घेरे में आ गया और वह और उनके साथ मौजूद पच्चीस लोग इस मुठभेड़ में मारे गए। विद्रोहियों द्वारा अपनाए गए पैटर्न को देखते हुए कई आला पुलिस अधिकारियों का मानना है सुबह की पहली घटना के जरिए बड़े पुलिस दल को फंसाया गया था। नक्सलियों ने यह तीनों वारदातें करीब दस से पंद्रह किलोमीटर के इलाके में अंजाम दी। जिस घटना में पुलिस अधीक्षक मारे गए उसमें तो उन्होंने एक पक्की सड़क को ही बारूदी सुरंग लगाकर उड़ा दिया था। कम से कम हाल में हुई यह दूसरी नक्सली वारदात है जिसमें घटनाओं को लगभग उस समय अंजाम दिया गया है जब कोई बड़ी शख्सियत या

केंद्रीय नेता छत्तीसगढ़ में मौजूद हो। घटना से एक दिन पहले केंद्रीय स्टील मंत्री ने राज्य का दौरा किया था। नक्सल विरोधी ऑपरेशन में शामिल एक अधिकारी ने बयान दिया है कि नक्सलियों के मुकाबले उनके पास फोर्स कम थी। इस पूरी घटना के बाद एक बार फिर से पुलिस के नक्सलियों के छापामार युद्ध के खिलाफ चलाये जा रहे मुहिम के तरीकों पर सवाल उठाये जा रहे हैं। छत्तीसगढ़ के गृह मंत्री के इस बयान पर की जब नक्सली यह पूरी मुहिम प्लान कर रहे थे तो पुलिस महानिदेशक साहित्यिक गतिविधियों में व्यस्त थे इस पूरी घटना को नया रंग दे दिया है। मई के महीने में छत्तीसगढ़ की राजधानी रायगढ़ से करीब डेढ़ सौ किलोमीटर दूर एक बारूदी सुरंग में विस्फोट करके नक्सलियों ने एक आम नागरिक समेत 13 सुरक्षाकर्मियों को मार डाला था। उस घटना के एक हफ्ते पहले ही एक और हमले में 11 लोगों की मौत हो गई थी। पिछले दिनों पुलिस पार्टी पर नक्सलियों द्वारा कम से कम आधे दर्जन बड़े हमले हुए हैं और पहले भी नक्सलियों ने एक पुलिस अधीक्षक के काफिले को भी बारूदी सुरंग से उड़ाने की कोशिश की थी। केंद्र सरकार ने कहा है कि खुफिया जानकारियों के अनुसार राजधानी दिल्ली, पंजाब और उत्तराखंड में भी नक्सली गतिविधियां देखी जा रही हैं। ऐसा पहली बार है जब सरकार ने राजधानी दिल्ली में नक्सलियों के सक्रिय होने की बात कही है। गृह राज्य मंत्री अजय माकन ने एक सवाल के लिखित जवाब में यह जानकारी दी है। उनके जवाब में कहा गया है, हमारे पास जो भी खुफिया जानकारी आई है उसके अनुसार दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश और उत्तराखंड में नक्सली गतिविधियां देखी गई हैं। लेकिन यहां माओवादियों ने किसी हिंसक घटना को अंजाम नहीं दिया है।

सरकार ने नक्सलियों के केंद्र स्तर पर किसी भी प्रकार की बातचीत की संभावना से इंकार किया और कहा कि फिलहाल ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है। हालांकि माकन ने साफ किया कि अगर कोई राज्य सरकार नक्सलियों से बातचीत करती है तो वो इसका स्वागत करेंगे। माकन का कहना था, “केंद्र सरकार की ओर से नक्सलियों से सीधी बातचीत का कोई प्रस्ताव नहीं है। राज्य सरकारें पहले भी वामपंथी चरमपंथियों से अपील करती रही हैं कि वो हथियार छोड़कर बातचीत का रास्ता अख्तियार करें।” उनका कहना था कि सरकार ने नक्सली हिंसा से निपटने के लिए एक ऐसा रुख अख्तियार किया है जिसके तहत सुरक्षा,

विकास और आम लोगों की भावनाओं का ध्यान रखा जा रहा है।

पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ने कहा है कि केंद्र सरकार ने पश्चिम बंगाल में नक्सलवादियों के खिलाफ अभियान में सहयोग देने का वादा किया है। उनका कहना था नक्सलवादियों के खिलाफ सांझा अभियान चलाए जाने की जरूरत है। उन्होंने पत्रकारों से बातचीत में कहा कि केंद्र सरकार इस बात से सहमत हो गई है कि पश्चिम बंगाल में फिलहाल केंद्रीय सुरक्षा बलों को रहने की जरूरत है। गौरतलब है कि पिछले कुछ दिनों से पश्चिम बंगाल में केंद्रीय सुरक्षाबलों की वापसी की खबरें आ रही थीं जबकि पश्चिम बंगाल सरकार चाहती है कि सुरक्षाबल तैनात रहें। उन्होंने कहा कि झारखंड से लगी सीमा पर अभियान छोड़ा जाना चाहिए क्योंकि उसी रास्ते नक्सलवादी पश्चिम बंगाल में प्रवेश कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि नक्सलवादी समस्याओं के निदान के लिए मुख्यमंत्री केंद्रीय गृहमंत्री से पहले ही मुलाकात कर चुके हैं।

नक्सलवादी नेता छत्रधर महतो की गिरफ्तारी के बाद प. बंगाल के मुख्यमंत्री की प्रधानमंत्री से ये पहली मुलाकात थी। इसके पहले प्रधानमंत्री ने कहा था कि नक्सलवाद देश की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा आंतरिक खतरा है। रविवार, 11 अक्टूबर, 2009 को प्रधानमंत्री ने नक्सलियों के खिलाफ सेना के इस्तेमाल से इनकार किया और कहा कि अगर नक्सली हिंसा का रास्ता छोड़ दें तो उनसे बातचीत हो सकती है। उन्होंने नक्सलियों को आतंकवाद की श्रेणी में डालने से भी इन्कार किया। यह पूछे जाने पर कि क्या सरकार नक्सलियों को आतंकवादी संगठनों की सूची में डालने पर विचार कर रही है, प्रधानमंत्री ने कहा, “नक्सलियों पर गैर कानूनी गतिविधि निषेध अधिनियम के तहत पाबंदी है।” मुंबई में एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में उन्होंने स्पष्ट किया कि नक्सलियों के खिलाफ सेना का इस्तेमाल नहीं किया जाएगा। प्रधानमंत्री ने कहा, “हम नक्सलियों के खिलाफ सेना के इस्तेमाल के पक्ष में नहीं हैं। नक्सलियों के खिलाफ अभियान के लिए पुलिस और अर्ध सैनिक बल पर्याप्त हैं।” नक्सलवाद को देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बताते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि उनके साथ बातचीत तभी संभव है, जब वे हिंसा का रास्ता छोड़ दें। उन्होंने कहा कि नक्सलवादी ही क्यों, अगर जम्मू-कश्मीर के आतंकवादी हिंसा का रास्ता छोड़ दें, तो उनके साथ भी बातचीत हो सकती है। हम नक्सलियों के खिलाफ सेना के इस्तेमाल के

पक्ष में नहीं हैं। नक्सलियों के खिलाफ अभियान के लिए पुलिस और अर्ध सैनिक बल पर्याप्त हैं। पिछले कुछ महीनों में नक्सलवादी हिंसा में तेजी आई है। हाल ही में महाराष्ट्र के गढ़ चिरौली में नक्सलवादियों ने 17 पुलिसकर्मियों की हत्या कर दी थी। जबकि कुछ दिनों पहले झारखंड के एक पुलिस इंस्पेक्टर की अपहरण के बाद गला काटकर हत्या कर दी गई थी। ये भी माना जा रहा है कि केंद्र सरकार नक्सलवाद प्रभावित राज्य सरकारों के साथ मिलकर जल्द ही नक्सलवादियों के खिलाफ बड़ा अभियान शुरू करने वाली है और इस संबंध में नई रणनीति बनाई गई है।

गुरुवार 8 अक्टूबर, 2009 को भारत की सुरक्षा मामलों की कैबिनेट समिति ने माओवादियों से निपटने के लिए नई योजना को मंजूरी दे दी। इस बैठक की अध्यक्षता प्रधानमंत्री ने की। पीटीआई के मुताबिक बैठक में ताजा स्थिति की समीक्षा की गई और नक्सल समस्या से निपटने के तरीकों पर चर्चा की गई। एक दिन पहले ही गृह मंत्री ने माओवादियों को आगाह किया था कि वे हिंसा छोड़ दें या फिर नतीजे भुगतने के लिए तैयार रहें। इस बीच रक्षा मंत्रालय ने कहा है कि वो भारतीय वायु सेना के प्रस्ताव पर विचार कर रहा है। मांग की गई थी कि आत्मरक्षा के लिए वायु सेना को माओवादियों पर गोली चलाने की अनुमति हो। रक्षा मंत्री ने नई दिल्ली में पत्रकारों से कहा कि इस प्रस्ताव पर अभी कोई फैसला नहीं लिया गया है और न ही कैबिनेट समिति के समक्ष ये प्रस्ताव पेश किया गया है।

इससे पहले गुरुवार को आईएफ प्रमुख ने कहा था कि नक्सल प्रभावित इलाकों में अपने हेलिकॉप्टरों और कर्मचारियों की रक्षा के लिए विशेष कमांडो तैनात किए जाएंगे। उन्होंने ये स्पष्ट कर दिया कि माओवादियों के खिलाफ 'रैम्बो स्टाइल' में कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी। प्रमुख ने बताया कि कमांडो की तैनाती बचाव कार्यों के अलावा वायु सेना के जवानों और उपकरणों की रक्षा करने के लिए की जा सकती है। माओवादियों या नक्सलियों का कहना है कि सरकार उनके संगठन और ताकत को लेकर दुष्प्रचार कर रही है।

उनका कहना है कि न तो उनके संगठन का प्रभाव इतना व्यापक है और न उनके पास ऐसे आधुनिक हथियार हैं, जैसा सरकार बता रही है। प्रतिबंधित संगठन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के प्रमुख

नेता सव्यसाची पंडा ने उड़ीसा के जंगलों में एक नक्सली कैंप में कहा है कि 'दमन की योजना के बीच बातचीत का प्रस्ताव सरकार का नाटक' है। बस्तर में नक्सलियों के खिलाफ चल रहे आदिवासियों के तथाकथित स्वस्फूर्त आंदोलन सलवा जुडुम के बारे में उन्होंने कहा कि इस आंदोलन की वजह से उनके संगठन को बहुत फायदा हुआ है।

नक्सली मामलों के बहुत से जानकार कह रहे हैं कि केंद्र सरकार के 'निर्णायक लड़ाई' के फैसले से माओवादी संगठन में भय का वातावरण है। केंद्र सरकार संकेत दे रही है कि जल्द ही वह राज्य सरकारों के साथ मिलकर नक्सलियों के खिलाफ बड़ा अभियान छेड़ने जा रही है। माना जा रहा है कि तीन राज्यों के चुनाव निपट जाने के बाद सरकार ऐसा कोई कदम उठा सकती है। पिछले महीने दिल्ली में पुलिस महानिदेशकों और महानिरीक्षकों के एक सम्मेलन में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने दोहराया कि नक्सली देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा है।

पिछले कुछ बरसों में प्रधानमंत्री यह बात कई बार कह चुके हैं कि नक्सली आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा है। लेकिन गृहमंत्री ने पहली बार एक चौंकाने वाला आंकड़ा पेश किया और कहा कि नक्सलियों का प्रभाव देश के 20 राज्यों के 223 जिलों में फैल चुका है। उन्होंने नक्सली हिंसा के आंकड़े भी दिए और कहा कि नक्सली हिंसा से देश में सबसे अधिक लोग मारे जा रहे हैं। लेकिन युवा माओवादी नेता सव्यसाची पंडा ने इन आंकड़ों को गलत बताते हुए कहा कि सरकार माओवादियों के खिलाफ दुष्प्रचार कर रही है। लेकिन सरकार गलत आंकड़े क्यों पेश करेगी, इस सवाल पर वह कहते हैं, "एक तो हमारी ताकत को बढ़ा-चढ़ाकर बताकर सरकार दमन के लिए बड़ी योजना बना सकती है और बड़े बजट का प्रावधान किया जा सकता है जिससे मंत्रियों और अफसरों को भ्रष्टाचार का अवसर मिलेगा।"

वे कहते हैं, "जहां तक प्रभाव का सवाल है तो हमारा प्रभाव तो पूरे देश में है लेकिन जितने जिलों की बात सरकार कह रही है उतने जिलों में हमारा संगठन नहीं है।" सफाई देते हुए वे कहते हैं कि जिन स्थानों में भी नक्सलियों ने छिटपुट घटना को अंजाम दिया सरकारी आंकड़ों में वहां उन्हें प्रभावी मान लिया गया। इसी तरह वे सरकार के इन दावों का भी खंडन करते हैं कि माओवादियों के पास वैसे अत्याधुनिक हथियार हैं, जैसा कि प्रचारित किया जा रहा है उनका कहना था, "हमारी स्थिति

पहले से अच्छी हुई है लेकिन अभी भी ज्यादातर वही हथियार हैं जो पुलिस के नाम हैं क्योंकि ज्यादातर हथियार तो उनसे ही लूटे हुए हैं।” उन्होंने स्वीकार किया कि उनके पास हथियार हासिल करने के कुछ और जरिए भी हैं। लेकिन इसका ब्यौरा देने से इनकार कर दिया। वे प्रधानमंत्री की इस बात को भी दुष्प्रचार मानते हैं कि बुद्धिजीवियों में माओवादियों का प्रभाव बढ़ रहा है। वह कहते हैं, “साजिश की जा रही है कि बुद्धिजीवियों को माओवादी बताकर मार दिया जाए। कोलकाता में हमने देखा है कि कैसे बुद्धिजीवियों को नक्सली बताकर मारा गया था।” उन्होंने कहा कि यदि बुद्धिजीवी शोषित, पीड़ित जनता की चिंता कर रहे हों और उनकी बातें माओवादियों की बातों की तरह लग रही हों तो इसका मतलब यह नहीं कि बुद्धिजीवी माओवादी हो गए हैं।

नक्सली नेता से जब पूछा कि क्या नक्सलवादी आंदोलन ‘आतंकवादी आंदोलन’ में तब्दील हो गया है, उन्होंने बेबाकी से कहा कि नक्सलियों को क्रांतिकारी तो कहा जा सकता है लेकिन वे आतंकवादी नहीं हैं। फिर उन्होंने कहा, “पूँजीवादियों, जमींदारों और साम्राज्यवादियों के लिए तो हम आतंकवादी हो सकते हैं लेकिन आम जनता के लिए हम आतंकवादी नहीं हैं।” आंतरिक सुरक्षा के सवाल पर उन्होंने कहा कि नक्सली आंदोलन सरकार के लिए तो खतरा है लेकिन देश की आंतरिक सुरक्षा को उनसे कोई खतरा नहीं है। अपना कर्तव्य निभा रहे निर्दोष पुलिस और दूसरे सरकार कर्मचारियों को मारने के सवाल पर वे कहते हैं कि उन्हें अंदाजा है कि वे सिर्फ अपना काम कर रहे होते हैं लेकिन जिस संघर्ष में वे हैं उसमें यह सवाल महत्वपूर्ण होता है कि वे किसके आदेशों का पालन कर रहे हैं। इसके बाद वह पुलिस के अत्याचारों और नक्सली बताकर निर्दोष आदिवासियों को मार देने, महिलाओं से बलात्कार करने के मामले उठाते हैं और कहते हैं कि पुलिस उनके साथियों को फर्जी मुठभेड़ में मार रही है।

आमतौर पर यह धारणा है कि चीन की माओवादी सरकार से भारत के माओवादियों को समर्थन मिलता होगा, लेकिन माओवादी नेता ने कहा कि यह गलत धारणा है। उनका कहना था, “पहले के चीन और अभी के चीन में काफी अंतर है। माओ के देहांत के बाद चीन ने जो रास्ता अपनाया वह क्रांति का रास्ता नहीं है वह पूँजीवादी रास्ता है। अब वहां पूँजीवादी अर्थव्यवस्था है।” इसी तरह नेपाल के माओवादियों के विषय



में उन्होंने कहा, “हथियार बंद आंदोलन करके कुछ लोग भटके जा रहे हैं, नेपाल में भी यही हुआ है। वहां पार्टी के लोगों ने दलाल-पूँजीवादी लोगों से समझौता कर लिया है।” नेपाल के माओवादियों के हथियार छोड़ देने को वे साम्राज्यवादियों के सामने हथियार डाल देना मानते हैं और उन्हें ‘सुधारवादी’ कहते हैं। श्रीलंका में एलटीटीई की पराजय को भारत के माओवादी एक सबक की तरह देखते हैं। उन्होंने उनकी गलतियां गिनाते हुए कहा, “गुरिल्ला छापामार युद्ध में सबसे खतरनाक होता है, अपनी ताकत को अधिक मान लेना और एलटीटीआई ने यही गलती की।” एक सवाल के जवाब में उन्होंने स्वीकार किया उनके आंदोलन की एक कमजोरी है कि देश के कई हिस्सों में आदिवासी तो उनके आंदोलन के साथ हैं लेकिन दलितों का साथ उनको वैसा नहीं मिला है जैसा मिलना चाहिए। मध्यम वर्ग के समर्थन के बारे में उनका कहना था, “जहां शहरों में आंदोलन नहीं है वहां लोग हमसे कैसे जुड़ेंगे?”

उड़ीसा में पुलिस महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए और केंद्रीय खुफिया तंत्र में काम कर चुके एक अधिकारी कहते हैं कि वे सरकार के इस आकलन से सहमत है कि नक्सलियों का फैलाव 200 से अधिक जिलों में हो चुका है। उनका कहना है, “नक्सली जो यह कह रहे हैं कि सरकार झूठा प्रचार कर रही है कि इनका इतना प्रसार नहीं हुआ, मैं इससे सहमत नहीं हूँ।” वे कहते हैं, “देश के कई राज्यों छत्तीसगढ़, आंध्र और उड़ीसा, बिहार, झारखंड में ये लोग आक्रमण स्टेज में हैं लेकिन बहुत से अन्य राज्यों में गुरिल्ला जोन बनाने में सक्रिय हो गए हैं।”

एक राजनीतिक दल के महासचिव व युवा नेता ने कहा कि आम आदमी तक सरकार की पहुंच नहीं होने से नक्सलवाद की समस्या उभर रही है। उनके मुताबिक राज्य सरकार को नक्सलवाद से लड़ने के लिए विकास को लोगों तक पहुंचाना होगा। उन्होंने कहा कि झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा जैसे राज्यों में सरकार की पहुंच आम आदमी तक नहीं है। इसी वजह से नक्सलवाद का प्रसार हो रहा है। उन्होंने कहा कि जहां लोकतांत्रिक पद्धति के साथ सुचारू रूप से विकास हो रहा है वहां यह समस्या नहीं है।

## माओवादियों की चर्चा छाई रही

यदि कहें कि देश में आंतरिक सुरक्षा का मसला नक्सलियों या

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 162

माओवादियों के इर्दगिर्द ही घूमता रहा तो गलत नहीं होगा। केंद्रीय गृहमंत्री पी चिदंबरम ने पहली बार कहा कि माओवादियों का असर अनुमान से कहीं ज्यादा बड़े हिस्से में है। उनका कहना है कि अब देश के 20 राज्यों के 223 जिलों में माओवादियों का प्रभाव है। उन्होंने कहा कि माओवादियों के पास अत्याधुनिक हथियार हैं। वैसे आंकड़े बताते हैं कि नक्सली हिंसा में जितने लोगों की जान जा रही है उतनी अधिक मौत और किसी विद्रोह या चरमपंथी संगठन की हिंसा में नहीं जाती। गृहमंत्री ने कहा कि माओवादियों के खिलाफ निर्णायक लड़ाई लड़ी जाएगी और इसकी व्यापक तैयारियां भी दिखीं।

एक समय ऐसा था कि चर्चा चल पड़ी थी केंद्र की सरकार माओवादियों के खिलाफ सेना के उपयोग की तैयारी कर रही है। हालांकि बाद में इसका खंडन कर दिया गया। लेकिन इस कार्रवाई की प्रतिक्रिया में माओवादियों ने देश भर में हिंसक कार्रवाई बढ़ा दी। उन्होंने पहली बार एक ट्रेन का अपहरण किया और एक इंस्पेक्टर का अपहरण करके उसके बदले 14 आदिवासी महिलाओं को छोड़वाया।

### **माओवादियों की कार्रवाई**

सरकार ने माओवादियों के खिलाफ कार्रवाई को लेकर गंभीरता दिखाई और सीपीआई (माओवादी) के 12 शीर्ष अधिकारियों में से सात नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इसमें पोलित ब्यूरो के सदस्य भी शामिल थे। एक ओर पश्चिम बंगाल के लालगढ़ में माओवादियों के खिलाफ बड़ी कार्रवाई की खबरें आती रहीं तो छत्तीसगढ़ में 'ऑपरेशन ग्रीन हंट' शुरू होने की। इसके जवाब में या फिर हताशा में माओवादियों की हिंसा भी बढ़ती हुई दिखी। उन्होंने छत्तीसगढ़ में हुई एक मुठभेड़ में एक पुलिस अधीक्षक को मार दिया तो झारखंड में एक इंस्पेक्टर का अपहरण करने के बाद उनकी हत्या कर दी। फिर पश्चिम बंगाल में एक इंस्पेक्टर को अगवा किया और मांग रखी कि लालगढ़ से गिरफ्तार की गई 14 आदिवासी महिलाओं को रिहा किया जाए और उनके खिलाफ दर्ज मामले वापस लिए जाएं। सरकार का कहना था कि वो महिलाएं माओवादियों की सहयोगी हैं लेकिन बाद में उनको रिहा कर दिया गया। इसके बाद माओवादियों ने भुवनेश्वर-दिल्ली राजधानी एक्सप्रेस को रास्ते में रोक लिया। कई घंटों बाद इस ट्रेन को छोड़ा गया। हालांकि इसमें किसी को

कोई नुकसान नहीं पहुंचाया गया। माओवादियों ने इससे पहले पटरियां उड़ाई थीं, रेलवे स्टेशन फूंका था और ट्रेन के इंजन को उड़ाया था लेकिन यात्री गाड़ी का पहली बार अपहरण किया गया। एक घटना और भी पहली बार हुई। झारखंड में एक पटरी को माओवादियों ने विस्फोटक लगाकर उड़ा दिया जिससे एक यात्री गाड़ी के कई डिब्बे पलट गए। बाद में इसके लिए माओवादियों ने माफी मांगी। इस बीच छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखंड में हिंसा की छिटपुट घटनाएं जारी हैं। खबरें हैं कि छत्तीसगढ़ में बड़े पैमाने पर कार्रवाई की तैयारी चल रही है।

### **बातचीत का प्रस्ताव**

केंद्र सरकार की ओर से माओवादियों को बातचीत का प्रस्ताव दिया गया। गृहमंत्री ने कहा कि यदि माओवादी आतंकवादी नहीं हैं और यदि वे हथियार छोड़ दें तो सरकार उनसे बातचीत करने को तैयार है। हालांकि माओवादियों की ओर से इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया। माओवादियों का कहना है कि सरकार पहले अपनी कार्रवाइयां रोके तो वे बातचीत पर विचार कर सकते हैं।

जो बात नक्सली नेता ने भी कही और जिसने सरकार को भी चिंतित किया, वह है माओवादियों को आम लोगों, खासकर बुद्धिजीवियों का समर्थन। माओवादियों के खिलाफ निर्णायक लड़ाई की चर्चा के बाद कई बुद्धिजीवियों ने इस पर सवाल उठाए। एक बुद्धिजीवी ने तो आरोप भी लगाए कि दरअसल नजरें आदिवासी इलाकों में जमीन के नीचे मौजूद खनिजों पर है। अगला साल माओवादियों के लिए और उनसे निपटने के लिए तैयार बैठी राज्य सरकारों के लिए अहम साबित होने वाला है। केंद्रीय गृह मंत्री ने नक्सलियों को हिंसा बंद करने की चेतावनी दी है। उन्होंने कहा है कि इससे राज्यों को उनसे संबंधित मुद्दों पर चर्चा करने में मदद मिलेगी। उन्होंने यह भी कहा कि नक्सली जब तक हिंसा नहीं रोकेंगे, सुरक्षा बल उनका मुकाबला करते रहेंगे। बुधवार 7 अक्टूबर 2009 को मुंबई में पत्रकारों से बात करते हुए केंद्रीय गृह मंत्री ने कहा कि नक्सलवादी न सिर्फ हिंसा कर रहे हैं, बल्कि उनके बयानों से लगता है कि वे युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। हम एक सभ्य देश के नागरिक हैं और अपने ही देश के लोगों के विरुद्ध युद्ध नहीं छेड़ सकते। हम उन जनजातियों एवं गरीबों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनके प्रतिनिधि होने

का दावा नक्सली करते हैं। इसलिए हम मिलजुल कर काम कर सकते हैं। चिदंबरम ने एक सवाल के जवाब में इस आशंका से इन्कार किया कि नक्सलियों को किसी विदेशी सरकार से आर्थिक मदद मिल रही है। उन्होंने कहा कि नक्सली देश के अंदर से भी धन जुटाने में सक्षम हैं। वे इसके लिए बैंक लूटने, हफ्ता वसूलने और लोगों के अपहरण का रास्ता चुन सकते हैं। उनके अनुसार जब तक हिंसा नहीं रुकती, कोई विकास संभव नहीं है।

उन्होंने कहा कि वायुसेना किसी भी नक्सली हमले से अपनी सुरक्षा के लिए समुचित कदम उठाएगी। गृहमंत्री ने साफ शब्दों में कहा कि सरकार नक्सलियों से टकराव को युद्ध की तरह नहीं लेती है। हम अपने लोगों के खिलाफ युद्ध नहीं छेड़ सकते। हमारा मानना है कि नक्सली अथवा माओवादियों को हिंसा छोड़कर समाज की मुख्यधारा में शामिल हो जाना चाहिए और लोकतांत्रिक तरीके से अपनी समस्याओं का समाधान के लिए बातचीत का रास्ता अख्तियार करना चाहिए। पिछले समय से नक्सली हमलों में तेजी आई है। उन्होंने कहा कि सामाजिक दृष्टिकोण से आंतकी गतिविधियों से भी खतरनाक नक्सली गतिविधियां हैं।

सोमवार 17 अगस्त, 2009 को गृह मंत्री ने कहा है कि आंतरिक सुरक्षा मजबूत बनाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारें मिल कर काम करेंगी। इसी मुद्दे पर राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन को संबोधित करते हुए ने कहा कि देश के पूर्वोत्तर के कुछ राज्य अलगाववाद के सामने कई बार झुक जाते हैं, जिसकी वजह से वहां अलगाववाद की समस्या से निपटने में मुश्किलें पैदा होती हैं।

नक्सल प्रभावित क्षेत्रों का जिक्र करते हुए कहा कि नक्सलवाद की समस्या से निपटने के लिए “हम बात करेंगे, काम करेंगे और विकास की गतिविधियां चलाएंगे।” गृहमंत्री ने देश में नक्सल समस्या से निपटने के लिए अपनी सरकार की दोतरफा नीति की घोषणा भी की। अपनी इस नीति पर प्रकाश डालते हुए गृहमंत्री ने कहा कि पहले नक्सल प्रभावित क्षेत्र को नक्सलियों से मुक्त किया जाएगा और फिर वहां विकास के काम कराए जाएंगे।

## **खतरा कम नहीं**

इस दस्ते ने विद्रोहियों द्वारा बार-बार पुलिस वाहनों पर किए जाने

वैध समस्याओं के निदान हेतु हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति / 165

वाले हमलों के बाद पहले मोटरसाईकिल और फिर गश्त और हमलों के लिए पैदल जाना शुरू कर दिया। पुलिस ने हाल में ही जिले के नक्सल प्रभावित इलाके में तीन नई पुलिस चौकियां खोलने के साथ ही इलाके की गश्त भी तेज कर दी थी।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, सुभाष (2009), व्याया पीपुल प्रोटेस्ट, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली ।
2. कालरा, डा. शकुंतला, बच्चों का व्यक्तित्व विकास कैसे हो? दृष्टि प्रकाशन, दिल्ली ।
3. लाल, विचमला, वृद्धावस्था का सच, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली ।
4. देव, अजफन, देव इंदिरा अर्जुन, दास सुप्ता, मानव अधिकार स्रोत ग्रंथ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली ।
5. इंजीनियर, असगर अली, आज़ादी के बाद सांप्रदायिक दंगा, शिप्रा प्रकाशन, दिल्ली ।
6. क्रिस, स्टीवन जे, चिल्ड्रेन, एडोलेसेंट्स एंड मीडिया व्वालेंस, सेग प्रकाशन, नई दिल्ली ।
7. योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।
8. कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।
9. प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा ।
10. भारत 2010, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।
11. प्रकाश सुमंगल, गांधी का भारत भिन्नता में एकता, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत सरकार नई दिल्ली ।
12. हिंदुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली ।

13. नई दुनिया, नई दिल्ली ।
14. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, नई दिल्ली ।
15. दुबे, श्यामाचरण, मिश्र वंदना, भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत सरकार नई दिल्ली ।
16. बीथम, डेविड, बॉयले, केविन, लोकतंत्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत सरकार नई दिल्ली ।
17. सिंह, बैजनाथ, सामुदायिक ग्रामीण विकास, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत सरकार नई दिल्ली ।
18. [www.jagran.com](http://www.jagran.com)
19. [www.bbc.com/hindi](http://www.bbc.com/hindi)
20. [www.delhipolice.nic.in](http://www.delhipolice.nic.in)
21. [www.nhrc.nic.in](http://www.nhrc.nic.in)
22. [www.ncw.nic.in](http://www.ncw.nic.in)
23. [www.supremecourtfindia.nic.in](http://www.supremecourtfindia.nic.in)
24. [www.zeenews.com](http://www.zeenews.com)
25. [www.ncrb.nic.in](http://www.ncrb.nic.in)
26. टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली ।
27. मेल टुडे, नई दिल्ली ।
28. शर्मा, डा. के. के. भारत की जनसंख्या : आंकड़े एवं तथ्य, उपकार प्रकाशन, आगरा ।
29. अग्रवाल, डा. नोमिता, लॉ प्वाइंट, इंडियन टैक्स इंस्टीच्यूट, नई दिल्ली ।